CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमादरणीय पं. रतिनाथ जी महोदय
को सादर

6.2

के. अग्रे
५।९।७०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजगन्नाथग्रन्थमालायाः पञ्चमंपुष्पम्

श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोगः

सरल विस्तृत भेड़भाष्ययुतः

स्नेहोज्ज्वला जनेषु श्रेयोमार्गप्रदर्शनप्रवणा ।
जननीव माननीया गीता दीपप्रभेव वा विबुधैः ।

वैद्य कन्हैयालाल भेड़ा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रकाशक

वैद्य हरिवक्ष भेड़ा आयुर्वेदाचार्य

(चिड़ावा) राजस्थान

पुस्तक मिलने का पता—

वैद्य कन्हैयालाल भेड़ा

६८ A रूंगटाहाउस नेपीन्सी रोड,

बम्बई

सर्वाधिकार सुरक्षित लेखकाधीन

प्रथम संस्करण ११००

मूल्य ५ रुपये

मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी गीता जयन्ती

सम्वत् २०२६

मुद्रक—

श्री हरि प्रेस

सी० ६।७३ बागबरियार सिंह, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सादर कर कमलों में भेंट

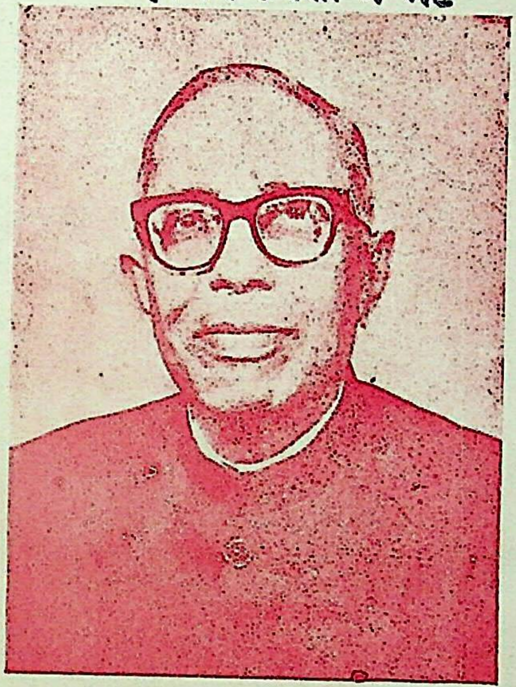

मेरे परमस्नेही सेठ श्री वेणी प्रसाद जी
डालमियां – कलकत्ता ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुभ सम्मतियां

श्री हरिः

अनन्तश्रीविभूषितसर्वतन्त्रस्वतन्त्रश्रीहरिहरानन्द (करपात्र) महाभागानां शुभाशीर्वादः ।

श्री पण्डित कन्हैयालाल जी वैद्य ने श्रीभगद्‌गीता पर एक पाण्डित्यपूर्ण बहुमूल्य भेडभाष्य लिखा है। उसमें श्रौतस्मार्त निष्काम कर्म योग एवं ब्रह्मात्मैक्य साक्षात्कार स्वरूप सांख्य सिद्धान्त का सम्यक् प्रतिपादन किया है। आस्तिकों को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

गीता स्फीता गुणौघैर्वलयितवलया विश्वतत्त्वार्थसार्थै
ब्र्ह्मज्ञान प्रदीप्ता मधुरिपुरमणीभक्ति राज्यैक सौधः।
पुण्यारण्यं मुनीनामनुपममहिमोद्‌गारकर्माभिरामं
तस्यां वैद्यः कन्हैया भगवदभिरतो भक्तिबन्धं न्यभान्सीत् । १ ।

शास्त्रक्षीरोदरत्नातुलनिधिरधुना व्याख्यया ख्यापितश्री
श्चच्चचर्यैकचार्वी प्रगुणितगरिमा गौरवागूरणीया।
विद्याधुर्याभिनन्द्या प्रसरतु परितो वैद्यकीर्त्तिः प्रकीर्ति।
भक्तेः लावण्यलक्ष्मीर्विलसति विपुला यत्र पूर्णान्नपूर्णा । २ ।

सख्यं सौख्यं श्रुतीनां, श्रुतमुपनिषदां तुङ्गश्रृङ्गाग्र्यहर्म्यम्।
पौराणी कीर्त्तिरेखा प्रचुरितचरितापश्चिमाचान्तचर्या।
गौडी माधुर्यधुर्या विलसति पदवी स्वादनीयाभिवन्द्या
व्याख्या कौशल्यकान्ता कृतिभिरनुकलं भावुकैर्भावनीया ।३।

स्वामी श्री महेश्वरानन्दजी

जगद्‌गुरुशङ्कराचार्यकाशीपीठधीश्वर।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री पण्डित कन्हैया लाल जी भेडा द्वारा रचित गीता की द्वादशाध्याय का सङ्कलित अनुवाद सुन्दर है। बड़े परिश्रम से आपने इसके नानापुराणनिगमागमसार संग्रह किया है। जिससे जिज्ञासु जनों का उपकार होगा।

श्री निरंजन देव जगद्गुरु श्री शंकराचार्य गोबर्द्धनपीठ पुरी

श्री जगद्गुरु शंकराचार्य हिमाचल प्रदेशानाम्—शुभाशीर्वादः।

वैद्य कन्हैयाल भेड़ाकृत भक्तियोग के 'भेडभाष्य' को पढकर परम प्रसन्नता हुई है। यह अत्यन्त पाण्डित्य पूर्ण है।

श्री कृष्णबोधाश्रमः

कविराज श्री कन्हैयालाल जी भेडा का 'श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोगः सरल विस्तृत भेड भाष्ययुत.' नामक ग्रन्थको मैंने देखा। श्री वैद्यजीने सगुण और निर्गुण उपासनाओं का विवेचन सुन्दर प्रकार से करते हुए गीता भक्तियोग की ग्रन्थि को खोलकर गीता के महत्व को बढाया है। मैं चाहता हूँ कि इस उत्तम ग्रन्थ से सभी लाभन्वित हों।

श्री गौरीनाथ शास्त्री

उपकुलपति वा० सं० वि० वि०

वैद्य श्री कन्हैयालाल जी भेड़ा बड़े सहृदय विद्वान् और भगवद्भक्त हैं। उन्होंने 'श्रीमद्भगवद्गीता में भक्ति योग' नामक यह पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में गीता के भक्ति–योग की बड़ी विशद व्याख्या की है। इसमें अनेक शास्त्र ग्रन्थों के आधार पर भक्ति के विविध पक्षों को समझाने का प्रयत्न किया गया है। मुझे इस पुस्तक को पढ़कर बड़ी प्रसन्नता है। भक्ति-तत्व अनुभव की वस्तु है। जिस पर भगवान का अनुग्रह होता है उसे ही यह प्राप्त होती है। परन्तु भगवद् गीता के अध्ययन, सन्तों के सत्संग ओर अन्यान्य सद् ग्रन्थों के अध्ययन से धीरे-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धीरे मनुष्य अनुग्रह का अधिकारी होता है। एक बार भगवान् की ओर उन्मुख होने पर प्रपचों का बंधन स्वयं छिन्न होता जाता है। श्रीमद्-भागवत में कहा भी है—

सतां प्रसंगात्मम वीर्यसंविदौ भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः !
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिः प्रीतिरनुक्रमिष्यति ॥"

श्रीमद्भगवत्गीता के अध्ययन मनन करने वाले भी क्रमशः भगवत् भक्ति की ओर भी उन्मुख हो सकते हैं, यह सोचकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इस पुस्तक में सद्ग्रन्थों का जो अमृतमय सार संग्रह किया गया है उसे पढ़कर जिज्ञासु जन भक्ति के मार्ग पर अग्रसर होंगे। श्री भेड़ा जी भक्त जनों के धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने इस पुस्तक के द्वारा भक्ति-तत्व को सुलभ और सरस बनाया है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

रेक्टर का० हि० वि० वि०

श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोगस्य भेडभाष्यं दृष्टम्। वैद्येनश्री कन्हैयालाल भेडा नाम्ना सन् १९-१८ ईशवीये मत्तोऽधीत्य व्याकरणा-चार्य परीक्षा उत्तीर्णीकृता। अयञ्च वाल्यत एव कुशाग्रधीः परं योग्यश्च। अस्य व्याख्यां दृष्ट्वा परं प्रसीदति मे स्वान्तम्। अस्मै शुभाशिषो दीयन्ते। उत्तरोत्तरं सुखं भूयात्।

पूर्णचन्द्राचार्याः

अध्यक्षाः—काशीविद्वत्परिषदः

जगद्विख्यातविश्वविश्रुत वैद्यमार्तण्ड पं० श्री—कन्हैयायाल भेड़ा शास्त्रिमहोदयानां लिखितं गीताश्लोकव्याख्यानं मयाऽऽ- द्यन्तं दृष्टम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सरलप्राञ्जलहिन्दीभाषया विषयप्रतिपादनं गीताव्याख्यान-विषयकसमाधानपूर्वकान् संक्षेपेण विवेचितांश्च विषयान् सम्यक् सन्निरीक्ष्य लेखकमहोदयस्य सर्वतोमुखीं प्रतिभां तथाविधञ्च अनुपम-मलौकिकञ्च पाण्डित्यं प्रतीयते। एतेन अहं विश्वसिमि यदवश्यं लेखक-महोदयस्य सर्वथा अभिनन्दनीयस्य परिश्रमः साफल्यमेष्यतीति नास्त्यत्र लेशतोऽपि सन्देहावसरः।

शिवदत्तमिश्रः
सम्मानित प्राध्यापकः
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी।

अद्यमयाचिकित्सकचक्रचूडामणिभेड़ोपनामकपण्डितप्रवरकन्हैयालाल-प्रणीतोऽभिनवोऽपिकृतितल्लजोऽयं श्रीभगवद्गीताभक्तियोगनाम-को ग्रन्थः साक्षात्कृतः। यद्यपिग्रन्थस्यास्यविषयाविशेषविलोकनाय त्रिचतुरान्यहानिलघीयांस्येवतथाकुतूहलाक्रान्तेनमनसात्वरितं सम-चारयं चक्षुषीद्वित्रस्थलेषु सटीकगीताभाष्यभाषितभावभृतोविषयाविमर्शः-क्षीरनिधेरिवभरणीयमणिरिवाध्यात्मशास्त्रसन्दोहात्समृद्धतोऽनुस्यूतः।

कालीप्रसाद मिश्रः
व्याकरणाचार्य
भूतपूर्व प्रिंसिपल संस्कृत महाविद्यालय
का० हि० वि० वि०

श्रीमद्भगवद्गीताशास्त्रं सर्ववेदसारभूतमिति न तिरोहितं विदुषां, काण्डत्रयात्मकेऽस्मिन् भक्तिकाण्डस्यमध्येषडध्याये विन्यासात् तस्या-देहलीदीपकन्यायेनोभयत्रौपयिकतया तदध्ययनंसर्वथापेक्षितमित्यालोच्य-भिषग्वरकन्हैयालाल भेडामहोदयेन तदुपरिस्वनाम्ना भेडभाष्यं विरचि-तमालोच्यनितान्तमान्तरं मे आनन्दनिमग्नमासीत्। भक्तिरेवेदानीन्तना-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नसिाधारणजनानां कृते सुलभसाधनं श्रेयःसमृद्धये लोकाभ्युदयार्थचेति।
तदर्थमिदं टीकानिहितं तत्वंसर्वथासमादायश्रेयोर्थिभिर्भक्तियोगकामैः समादरणीयमितिसर्वात्मना संप्रदायविशुद्धमिति संमनुते।

कमलाकान्त मिश्रः

सम्मानित प्राध्यापकः वा० सं० वि० वि०

श्रीपण्डितप्रवरकन्हैयालालभेड़ामहाभागेनविरचिता श्रीमद्भगवद्गीतायाद्वादशाध्यायस्यव्याख्याभेडभाष्याख्यामयादृष्टा। मन्ये दुर्बोधाऽपिगीताहिन्दीभाषयाव्याख्यातासर्वोपनिषत्सारमबुद्धचतामपिमनसिज्ञानयोगंभक्तियोगं नूनंश्रद्धामुपधायजनयिष्यतीति। आशासे चायं-व्याख्याताऽनेनपुण्येन सुदीर्घमायुः सारोग्यमाप्नुवन्ग्रन्यानपिअध्यात्म-ग्रन्थान्विनिर्मिणुयाल्लोकोपकाराय महते इति।

रघुनाथ शर्मा

व्याकरण वेदान्त मनीषी

पण्डितप्रवरैः श्री कन्हैयालालभेडाभिधैर्विरचितं श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोग नामकं ग्रन्थमनुशीलयतो मम नितान्तं प्रसीदति स्वान्तम्। अत्र श्रीभगवद्गीताया द्वादशाध्यायस्य भक्तियोगपरायणस्य-नितरां विस्तृतं दृष्टान्तप्रदानेन विशदं शास्त्रतत्त्वविवेचनपरं प्रमेयबहुलं-च भाष्यं हिन्दीभाषया निबद्धं विलोक्य कस्य सचेतसश्चेतोनप्रमोद-मुपैति। भाष्यमिदं वैद्यवरस्य न केवलं नानाशास्त्रगामिवैदुष्यमाविष्क-रोति, अपि तु तस्य भगवदनुरागस्निग्धंहृदयमपि व्यक्तिं नयति। ग्रन्थो-ऽयं प्रामाणिकोभक्तितत्त्वप्रकाशकस्तत्त्वजिज्ञासुभिर्जनैः सावधानेन मनसाऽनुसन्धेयश्चिन्तनीयश्चेति संमनुते।

बलदेव उपाध्यायः

प्राक्तावकाश संचालक, अनुसंधान संस्थान

वा० सं० वि०वि०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमद्भगवद्गीतायां भक्तियोगः सरल विस्तृत भेडभाष्ययुतः' नाम के ग्रन्थ को मैंने आमूलचूल अध्ययन किया। वैद्य श्री कन्हैयालाल भेड़ा जी का यह ग्रन्थ भक्तियोग के तत्त्व को यथावत् समझाने में क्षम है। अति सरल भाषा से भक्तियोग जैसा महत्व रखनेवाला विषय को उपपादन करना श्री वैद्यजी के पाण्डित्य का अभिव्यञ्जक है। मैं विश्वास करता हूं भारत के प्रत्येकमानव इसके अध्ययन से लाभ उठावेंगे।

पं० पट्टाभिरामशास्त्री
विद्यासागर शास्त्ररत्नाकर
विद्यावाचस्पति

वाङ्मालिका

१

मुरारिवदनाम्बुजस्रवदमन्द माध्वीझरी,
त्रिताप वलजित्वरी तिमिरभार संहारिणी।
समस्तनिगमागमाम्बुधि मनोज्ञरत्नच्छटा-
मयूरवरुचिराकृति जयति काऽपि गीताम्बिका॥

२

नवव्याख्याव्याजात् सहृदयमनः प्रीतिविधये,
प्रवृत्तः सद्विद्या विकसित हृदम्भोरुहवनः।
पुरारेः पादान्ते विहितवसतिर्वैद्यतिलकः,
कन्हैय्यालालोऽयं सुकृतशतपूतो विजयते॥

३

काशीनिवासकुशलो विदुषः समस्तान्,
दिव्यौषधैस्तरुणयन् करुणार्द्रचेताः।
गीतार्थचिन्तनपटुर्मधुरस्मितास्यः,
सौभाग्यभाग् भिषगसौ सततं विभातु॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४

स्फुरन्नवनवोल्लासा दरहासाञ्चितानना।
कन्हैय्यालालकृतिनः सेव्या व्याख्यासरोजिनी॥

बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते
एम० ए० साहित्याचार्य
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय

मैंने वैद्यराज पं० कन्हैयालाल जी भेडा द्वारा लिखित गीता का स्वाध्याय किया। इस ग्रन्थ में श्रीमद्भगवद् गीता के उच्चतम उपदेशों की दार्शनिक समीक्षा ऐसी व्यावहारिक भाषा में की गयी है, जिसे पढ़कर साधारण व्यक्ति भी गीता के वास्तविक तात्पर्य को भलीभाँति समझ सकता है।

भेड़ाजी ने स्थल-स्थल पर गीता का मार्मिक विवेचन करते हुए वास्तविक भाव को पाठकों तक पहुँचाने का पूर्ण प्रयास किया है और गीता के अमृतमय उपदेशों में जो पद-पद पर रहस्य भरा पड़ा है उस पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

अतः पाठकों से अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थ का अनुशीलन कर लेखक के प्रयास को सफल बनाने का कष्ट करें।

श्री कृष्णमणि त्रिपाठी
व्याकरण-साहित्य-साङ्ख्ययोग, पुराणेतिहासाचार्य, साहित्यरत्न
वा० सं० वि० वि०

भिषक्-प्रवरों में मूर्धन्य, विद्वद्वरेण्य श्रीमान् पण्डित कन्हैयालाल जी भेड़ा के स्वाभाविक विद्यानुराग, निरभिमानता, ऋजु-स्वभाव-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि गुणों को देखकर चित्त में बहुत ही सन्तोष हुआ। आप केवल एक आयुर्वेद के ही मूर्धन्य नहीं, प्रत्युत व्याकरण, साहित्य, सांख्य-योग और वेदान्तादि दर्शनों के भी प्रौढ़ पण्डित हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि—

'विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्'' ।

के अनुसार आपकी इस श्लाध्य व्याख्या से संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के पाठकों के चित्त में भगवद्भक्ति का सञ्चार होगा।

प्रेमवल्लभ त्रिपाठी

अध्यक्ष धर्मशास्त्र विभाग

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी

मान्य श्री पं० कन्हैयालाल भेडा जी द्वारा प्रणीत 'श्रीमद्भगवद्-गीता' के द्वादशाध्याय का हिन्दी में विवरण देखा। इसमें उन्होंने सगुण एवं निर्गुणोपासना का निर्देश करते हुए कई प्रकार के प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थों के वचनों का सङ्कलन किया है। आप वैद्य तथा संस्कृत के अधिकारी विद्वान हैं।

इससे जनता को बहुत लाभ होगा। इससे विद्वानों को भी परितोष प्राप्त होगा; कई नई-नई बातों का ज्ञान भी प्राप्त होगा।

हमें उनके इस परिश्रम से बहुत सी प्रसन्नता हुई।

श्री दीनानाथ शर्मा शास्त्री सारस्वतः

विद्यावागीशः, विद्यानिधिः, विद्यावाचस्पतिः

प्रधानाचर्य रामदत्त संस्कृतमहाविद्यालय

दरीबाकलां दिल्ली–६

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम सहृदय तथा मननशील विद्वान् श्री कन्हैयालाल भेड़ा द्वारा लिखित गीता के बारहवें अध्याय पर 'भेड़ भाष्य' देखा। यह अद्भुत संयोग की बात है कि मूलाकार भी कन्हैया और व्याख्याकार भी कन्हैया। फिर कन्हैया द्वारा प्रोक्त पदावली का मार्मिक ज्ञान ऐसे विशद रूप में कन्हैया के सिवा दूसरे किसके हृदय में उतर सकता था। यों तो ईश्वर शक्ति सारी गीता ही उपनिषद है; तथापि भक्ति-योग नाम से विख्यात इस अध्याय का 'ईश्वरोपासनोपनिषत्' यह नूतन नाम करण कितना सुसंगत और सार्थक है; यह हृदयंगम करके बड़ा उल्लास प्राप्त होता है।

करके प्रयत्न महा धीवर सुधीवर ने
भक्तियोग-भाष्य का बनाया एक बेड़ा है।
तर जाय हारा भी सहारा जिसका ले,
मिटा-काम, क्रोध लोभ आदि दस्यु का बखेड़ा है।
गो पद समान हो महान भवसिन्धु और
सहना न ऊर्मियों का पड़ता थपेड़ा है।
जाना जिसे पार हो, अशंक वह आये. यहाँ–
केवट कन्हैया-सा कन्हैयालाल भेड़ा है॥

—पाण्डेय रामनारायण दत्त शास्त्री 'राम'
साहित्याचार्य, व्याख्याता, राजशास्त्र
वा० सं० वि० वि०

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आयुर्वेदाचार्य श्रीपण्डित कन्हैयालालजी भेडा लिखित श्रीमद्भगवद्गीता के द्वादशाध्यायका भेडभाष्य पढ़कर बड़ा आनन्द हुआ। वैद्य प्रवर भेड़ाजी अनेक शास्त्रों के प्रौढ़ विद्वान हैं और संस्कृत तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी पर आपका पूर्ण अधिकार है। सँस्कृत में गद्य पद्य रचना तो आपके लिये हस्तामलक समान है। यह भाष्य आपने अनेक ग्रन्थ प्रमाणों के साथ सरल हिन्दी में लिखा है, उससे संस्कृत न जानने वाले हिन्दी भाषा वह समुदाय को भी भगवद्भक्ति की पिपासा शान्त करने का पूर्ण लाभ होगा।

अधिगत शास्त्र परमसुहृद् वैद्य प्रकर पण्डित भेडाजीने भगवद्गीता के द्वादशाध्याय का जो भक्ति योग के नाम से प्रसिद्ध है यह सर्वोपयोगी भाष्य लिखकर सर्वसाधारण को भक्ति के अमृतपान से कृतकृत्य करने का प्रयास किया है।

मैं इस प्रयास के लिये वैद्यवर भेडाजी का धन्यवाद करता हूं और आशा करता हूँ सभी धर्मानुरागी सज्जन इससे लाभउठावेंगे।

दुर्गादत्त शास्त्री

आयुर्वेद शास्त्राचार्य

श्रीमद्वैद्य प्रवर कन्हैयालाल भेडा महोदयानां विरचितं गीता भाष्यम् आमूलचूलं सोल्लासं दृष्टम्। अत्र श्रीमद्भिः समुन्नीतं नवं नवनीतं गोपीवल्लभस्य प्रीत्यै भवतु।

ब्र० शङ्करानन्दः

एम० ए० नव्यन्याय वेदान्त सांख्य योग व्याकरणाचार्यः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ॐ श्रीपरमात्मने नः

अथद्वादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥११॥
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥१३॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१४॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥१५॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥१६॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥१७॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥१८॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥१९॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२०॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु, ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री

सहायक ग्रन्थ एवं विद्वानों की सूची

१—ऋग्वेद
२—यजुर्वेद
३—सामवेद
४—अथर्ववेद
५—ऋग्वेदशाकल्यसंहिता
६—अथर्ववेद शौनकसंहिता
७—अथर्ववेद गोपथ ब्राह्मण
८—सामवेद कौथुमसंहिता पवमानपर्व
९—ईशावास्योपनिषद्
१०—अथर्ववेदसूक्त
११—केनोपनिषद्
१२—छान्दोग्योपनिषद्
१३—प्रश्नोपनिषद्
१४—नारद उपनिषद्
१५—बृहदारण्यकोपनिषद्
१६—श्वेताश्वतरोपनिषद्
१७—तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली
१८—तैत्तिरीय-उपनिषद्
१९—मुक्तिकोपनिषद्
२०—कठोपनिषद्
२१—तैत्तिरीय संहिता
२२—मैत्रेव संहिता
२३—शतपथ ब्राह्मण
२४—कृष्ण यजुर्वेद
२५—माण्डूक्यकारिका
२६—विष्णुधर्म
२७—गृह्यसंमुह
२८—निरुक्त दुर्गाचार्य
२९—सर्वानुक्रमणी
३०—सत्याषाढ़ सूत्र
३१—केनोपनिषद्
३२—अत्रिसंहिता
३३—वृहत्पाराशरस्मृति
३४—वृ० योगीयाज्ञवल्क्य स्मृति
३५—वृ० हारीतस्मृति
३६—मनुस्मृति
३७—याज्ञवल्क्यस्मृति
३८—शाण्डिल्यसूत्र
३९—नारदपञ्चरात्र
४०—नारदभक्तिसूत्र
४१—गौतमवृत्ति
४२—जीवन्मुक्तिविवेक
४३—ब्रह्मसूत्र (माध्वभाष्य)
४४—वाल्मीकीयरामायण
४५—महाभारत
४६—श्रीमद्भागवत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

४७—यजुर्वेद कठोपनिषद्
४८—कात्यायन
४९—देवीभागवत
५०—सर्ववेदान्तसार
५१—पञ्चदशी
५२—विवेक चूडामणि
५३—भक्तिरसायन
५४—विष्णुपुराण
५५—हरिवंश
५६—भविष्यपुराण
५७—कूर्मपुराण
५८—प्रबोधसुधाकर
५९—अध्यात्मरामायण
६०—भगवन्नाम कौमुदी
६१—पद्मपुराण
६२ बृ० नारदीयपुराण
६३—लिंगपुराण
६४ अग्निपुराण
६५—भक्तिहंस
६६—योगदर्शन
६७—न्यायदर्शन
६८—वैशेषिक दर्शन
६९—स्कन्दपुराण
७०—न्यायविवरण
७१—श्री० भ० गीता शंकरभाष्य
७२—आनन्दगिरिव्याख्या
७३—रामानुज भाष्य
७४—माध्वभाष्य
७५—पैशाचभाष्य
७६—ब्रह्मानन्दगिरि
७७—मधुसूदनी
७८—शंकरानन्दी
७९—नीलकंठी
८०—भावप्रकाश
८१—अविगीता
८२—सर्वदर्शन संग्रह
८३—न्यायवाचस्पति
८४—न्यायसिद्धान्त मुक्तावली
८५—तर्कभाषा
८६—तर्कसंग्रह
८७—परमार्थप्रपा
८८—अपरोक्षानुभूति
८९—वामनपुराण
९०—सिद्धान्त कौमुदी
९१—शब्देन्दुशेखर
९२—काशिका
९३—सुश्रुतसंहिता
९४—चरक संहिता
९५—भेडसंहिता
९६—वाग्भट्टसंहिता
९७—रसगंगाधर
९८—साहित्यदर्पण
९९—कुवलयानन्द
१००—गीतगोविन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१०१–भर्तृहरि
१०२–सनातनधर्म तत्वावलोक
१०३–म० म० श्रीगिरिधरजी
१०४–श्रीसातवलेकर
१०५–उत्तररामचरित
१०६–म० म० पं० शिवदत्तजी
१०७–विदग्धमाधव
१०८–रामचरितमानस
१०९–आलवन्दार स्तोत्र
११०–श्रीपादगोस्वामी
१११–श्रीचैतन्यमहाप्रभु
११२–अमरकोष
११३–विष्णुसहस्रनामशांकरभाष्य
११४–शिशुपालवध
११५–किरातार्जुनीय
११६–रघुवंश
११७–श्रीतिलकजी
११७–गौरांगमहाप्रभु
११९–लघुभागवतामृत
१२०–स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती
१२१–अवधूतगीता
१२२–महाछत्तजातक
१२३-सेतकौतुजात
१२४–मखादेव जातक
१२५–सूर्यगीता
१२६–श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी
१२७–वैद्यश्रीहरिवक्षजीजोशी(हरिभाष्य)
१२८–सांख्यकारिका
१२९–योगवासिष्ठ
१३०–लीलांशुक
१३१–काव्यप्रकाश
१३२–नैषधकाव्य
१३३–ब्रह्मसूत्र शांकरकाव्य
१३४–माण्डूक्य कारिका
१३५–मार्कण्डेयपुराण
१३६ ब्रह्मसंहिता
१३७–मत्स्यपुराण
१३८–गरुड़पुराण
१३९–वामन
१४०–पं० श्रीकृष्णमणिजी त्रिपाठी
१४१–पद्मनेत्र
१४२–वेदान्तपरिभाष्य
१४३ वाराहपुराण
१४४–कुसुमाञ्जलि
१४५–अमृताविनपनिषद्
१४६–कल्याण (श्रीकृष्णांक)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

॥ श्री गोविन्ददेवः पातु माम् ॥

धरायामानीता भृशममृतशीता भगवता
मुनीन्द्रैरापीता मननपथनीता बुधवरैः ।
समुद्गीता पार्थप्रणयपरिवीता प्रतिपदं
विधत्तां श्रीगीता सकलभवभीतर्तिशमनम् ॥

२

व्याख्याः सन्ति सहस्रशो भगवतो गीता महाम्भोनिधेः
को वा विश्वगुरोर्वचो विवरणे मादृग् जनः कल्पते ॥
किन्तु स्वान्तविनोदनाय सुहृदामानन्दहेतोरियं
स्वल्पज्ञस्य कृति र्नवा सुविवृति र्विद्वन्मुदे जायताम् ॥

३

यजुर्वेदासंगाद्विहितकलिभंगः शितमति—
श्चिरं शाब्दे शास्त्रे विबुधपरमास्त्रे च निपुणः ।
जगन्नाथस्तातस्त्रिदिवमुपयातः सपदि मे
नवव्याख्यानेन प्रभुचरणसख्यं रसयतु ॥

४

भक्त्युद्गारपरामोद मिलद्रोलम्बमञ्जुला ।
कल्पतां शब्दमालेयं प्रीतये वनमालिनः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री:

हरि: ओम् श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां योगसास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन सम्बादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः प्रारम्यते ।

श्री मद्भागवद्गीता भीष्मपर्व का सुप्रसिद्ध अंश है। इसके १८ अध्याय हैं। इसके आरम्भ और अन्त में धृतराष्ट्र और संजय के संवादरूप से कुछ श्लोक हैं, शेष भगवान् श्रीकृष्ण और भक्त अर्जुन के सम्वादरूप हैं। गीता समस्त उपनिषदों का सार है। मुख्यतः अध्यात्म ग्रन्थ है।

यद्यपि महाभारत तथा अन्य पुराणों में अनेक गीताएँ प्राप्त हो रही हैं—यथा अष्टावक्रगीता, अवधूत गीता, उत्तर गीता, कपिल गीता, गणेशगीता, गर्भगीता, गीपीगीता, देवी गीता, जीवन्मुक्त गीता, नारद गीता, पाण्डव गीता, राम गीता, शिव गीता, श्रीश गीता, संन्यासगीता, सूर्यगीता, गुरुगीता, पिंगलगीता, शंपाकगीता, विचख्यु गीता, हारीतगीता, वृत्रगीता इत्यादि। किन्तु भगवद्गीता जैसा क्रमबद्ध ग्रन्थ दूसरा कोई नहीं है ! यह आत्मा के विषय में उसके पूर्ण विवेचन के विषय में, संसार में होने वाले भले बुरे व्यवहारों के विषय में. आत्मा और ईश्वर के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में, ज्ञान, धर्म, भक्ति इन तीन विषयों की प्रवृत्ति के विषय में अत्यन्त उदात्त एव जिज्ञासा की पूर्ति पूर्वक वर्णन करता है। इसकी रचना में सरसता है। विश्व के साहित्य में ऐसा सरसपूर्ण कर्म शास्त्र एवं मोक्ष शास्त्र प्रतिपादक अन्य कोई ग्रन्थ नहीं है। इसका द्वादश अध्याय जो भक्ति योग से प्रसिद्ध हैं। उसी पर यह यथाबुद्धि वलोदय व्याख्या की गई है। मेरे परम पूज्य

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पिता जी श्री जगन्नाथ जी भेड़ा जो शुक्ल यजुर्वेद–पातञ्जल महाभाष्य के साथ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता–श्रीमद्‌भागवत के पूर्ण मर्मज्ञ गिद्वान् थे— उन्हीं के शुभाशीर्वाद से यह 'भेड़भाष्य' लिखने का प्रयास किया है।

परमपवित्र त्रिकालदर्शी महर्षियों ने योगयुक्त होकर समाधि द्वारा सृष्टि का पूर्ण परिचय प्राप्त कर मनुष्य योनि में जन्म लेने के लिए प्रथम जीव को ८४ लक्ष योनियों में जन्म लेना पड़ता है। ८४ लाख योनियों में भ्रमण करने के वाद जीव को मनुष्य योनि प्राप्त होती है।

स्थावरं लक्षविंशत्यो जलजं नवलक्षकम् ।
कृमिजं रुद्रलक्षञ्च पक्षिजं दशलक्षकम् ।
पश्वादीनां लक्षत्रिंशच्चतुर्लक्षञ्च वानरे ।
ततोहि मानुषा जाताः कुत्सितादेर्द्विलक्षकम् । (वि० पु०)

अर्थात्–मनुष्ययोनि पाने के पहिले जीव को बीस लाख वार स्थावर (उद्‌भिज्ज) योनि में जन्म लेना पडता है। उसके बाद ग्यारहलाख वार कृमि (स्वेदज) योनि में जन्म लेना पड़ता है। उसके बाद उन्तीस लाख वार अण्डज योनि में जन्म लेना पड़ता है। इसमे (जीव को नव लक्ष बार जल में उत्पन्न होने वाली मछलियाँ–मगर–आदि योनियाँ, दश लाख वार स्थल में उत्पन्न होने वाली पक्षि योनियाँ प्राप्त होती हैं) तदनन्तर चौवीस लाख बार जरायुज (पशु–बानर आदि) योनियों में जन्म लेना पड़ता है। इसके बाद मनुष्य योनि में जन्म मिलता है।

इसलिए यह मनुष्य योनि ही धर्म—अर्थ-काम और मोक्ष को साधन है। इस कलियुग में अत्यन्त सरल जन्म सफल की कुञ्जी एक मात्र 'भक्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही है। भगवद् भक्ति करने में न आयु का कोई मूल्य है, न रूप का ही कुछ महत्व है' न विद्याध्ययन एवं जाति बल का ही उत्कर्ष अपेक्षित है और न सद्गुण एवं सद् विचार की ही मुख्यता मानी गई है। किन्तु भगवान् केवल प्रेम योग के भूखे हैं, इसलिए अनन्य प्रेम से ही प्रसन्न होते हैं। परम वैणष्व एवं भक्त शिरोमणि जीवगोस्वामीने ठीक ही कहा है—

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम् ।
कुब्जायाः किमुनामरूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनम् ।
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणै र्भक्तिप्रियो माधवः ।

व्याध का कौन सा अच्छा आचरण था ? ध्रुव का आयु ही क्या थी ? गजेन्द्र के पास कौन सी विद्या थी ? विदुर की कौन उत्तम जाति थी ? यादवपति उग्रसेन का कौन सा पुरुषार्थ था। कुब्जा का क्या विशेष सुन्दर रूप था ? सुदामा के पास कौन सा धन था ? भक्ति प्रिय माधव तो केवल भक्ति से हीं सन्तुष्ट होते हैं, गुणों से नहीं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हरिः ओम्' वेद के स्वाध्याय के प्रारम्भ में इस को उच्चारण किया जाता है

हरिः—यह भगवान् का सुप्रसिद्ध नाम है। इस की व्युत्पत्ति नारायणीय पर्व (अ० ३४२।६८) में इस तरह हुई है—

इडोपहूतयोगेन हरे भागं क्रतुष्वहम् ।
वर्णश्च मे हरिः श्रेष्ठस्तस्माद् हरिरहं स्मृतः ।

इस श्लोक में 'हरि' शब्द की व्युत्पत्ति दो तरह से की है। १-'इडोपहूता सह दिवा' इस मन्त्र के द्वारा आहूत भगवान् यज्ञों में स्वनिर्दिष्ट हविर्भाग को ग्रहण करते है तथा इनका वर्ण (रङ्ग) हरित् है—हरिन्मणि नीलमणि के समान उनका रूप सर्वथा सुन्दर एवं रमणीय है। विष्णुसहस्त्रनाम की भाष्य में भगवान् श्रीशंकराचार्यने 'हविर्हरिः' शब्द की टीका में भगवान् को हविष का ग्रहण कर्ता कहा है। यह व्याख्या 'यज्ञो वै विष्णुः'। इस वैदिक के आधार पर की गई है।

भगवान् के नामों का प्रकार सामान्य रूप से दो विभागों से विभाजित किया गया है १ गुणनाम २ कर्मनाम। कुछ नाम तो भगवान् के गुणों के आधार पर निश्चित किये गये हैं यथा गोविन्द नाम। हर—यह कर्म नाम है। पापों के हरणकर्ता होने के कारण भगवान् का 'हरि' नाम है। महाभारत के (शान्ति० नारायणीय पर्व, अ० ३४१) में भगवान् के ही ये वचन हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गौणानि तव नमानि कर्मजानि च कानिचित् ।
ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्व सामसु ।
बहूनि मम नामानि कीर्तितानि महर्षिभिः ।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी · (६।३।२४)

एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसाम्,
संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्,
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ।

'गुणकर्मनाम्नाम्' इस का यही आशय है कि भगवान् के नाम दो प्रकार के होते हैं—गुणनाम और कर्मनाम ।

'ओम्' की महिमा का वर्णन कृष्ण–यजुर्वेद 'कठोपनिसद' में 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत् ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि–'ओम्' इत्येतद्' (कठ १। २।१५) । यजुर्वेद–वाजसनेय संहिता (४०।१७) में 'ओं खं ब्रह्म' । छान्दोग्योपनिषद् । । १।१।१ में ओम्' इत्येतद् अक्षरमुद्गीथमुपासीत, ओम् इति हि उद्गायति' अथर्ववेद । 'प्रश्नोपदिषद्' में यः पुनरेतत् त्रिमात्रेण ओम्· इत्येतेनैव अक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायति स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः यथा पादो (काको) दरः (सर्पः) त्वचा, विनिर्मुच्य ते, एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः, स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम्' (५।५) कृष्ण यजुर्वेद - तैत्तिरीयोपनिषद् (१·८।१) में 'ओम्' इति ब्रह्म ओम् इति इदं सर्वम् (१।८।१) अथर्ववेद शौनक संहिता (६।१०।१८) ऋग्वेद

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शाकल्य संहिता (१।१६४।३६) निरुक्त (१३।१०।१) यहां यास्क एवं श्रीदुर्गाचार्य की वृत्ति। इनमें विस्तृत वर्णन हुआ है। छान्दोग्य का कथन है कि जैसे सब पत्ते शङ्कु (पत्ते की नसों) व्याप्त होते हैं, उसी तरह से ओकार से सम्पूर्ण वाणी व्याप्त है, यह सब कुछ ओङ्कार ही है। 'तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृष्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक् सन्तृष्णा। ओङ्कार एवेदं सर्वम् (२।२३।१ यही श्री० भ० गी० ७–८ श्लोक की व्याख्या में श्रीमधुसूदन जी कहते हैं। ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म (८।१३) यदक्षरं वेदविदो वदन्ति (८।११) रसोऽहमप्सु कौन्तेय (७।८) महर्षिर्णा भृगुरहम् (१०।२५) इन गीता वाक्यों में तथा 'आद्यं च त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता। 'एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायाम परं तथा:। प्रणवाद्यास्त्रयो वेदा: प्रणवे पर्यवस्थिता:। वाङ्मयं प्रणवं सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् (अत्रि० १।११।६) प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परं स्मृत:।' इस उपक्रम से ओङ्कारो विदितोयेन स मुनिर्नेतरोजन: (माण्डू० का० ११।२६–२६) इत्यादि श्रुतियों से ॐ ब्रह्म। ॐ तद्वायु: ॐ तदात्मा ॐ तत्सत्यम्। ॐ तत्सर्वम् (ना० उ० ६८) ये समस्त ओङ्कार ही है। यही नहीं हरिरेक: सदा ध्येयो भवद्भि: सत्वसंस्थितै:। ओमित्येवं सदा विप्रा:पठत ध्यात केशवम् (हरिवंश ३।८६।६) विष्णुधर्म (३।१२३।१३)। गृह्यसंग्रह (२।६) वृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृति (२।१५।१६) बृहत्पाराशर स्मृति (१२ – २६५ – २६७) बृहद्हारीतस्मृति (७-३५-३७) आदि से विस्तृत वर्णन हुआ है। 'ओम् वेद का सार स्वरूप है। इसीलिए वेदोच्चारण के प्रथम इसका ही उच्चारण होता है। इसी को ओमभ्यापादाने' (८।२।८७) इस सूत्र पर 'अभ्यादानं आरंभ:

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

त्र वर्तमानस्य इत्यर्थं इति वृत्तिः। 'न सुब्रह्मण्याख्यामाम्' (१।२।३०) इति सूत्रे कैयटस्तु 'सुब्रह्मण्योम्' इत्यत्र 'ओमभ्यापादान' इति प्लुतोदात्तत्वं न भवति, तस्य अयज्ञकर्मविषयत्वात्' इति वदन् अप्रारम्भेपि अनेन प्लुतमाह। अतएव (तस्य सूत्रस्य अयज्ञकर्मविषयत्वादेव इति भैरवः) शुद्धप्रणवजपेपि तं प्लुतमेव जपन्ति। 'अभ्यादान पदेन' 'अयज्ञकर्म' उच्यते—इति तदाशयं वर्णयन्ति। (नागेशभट्टः) यहाँ पर श्रीभैरवमिश्रने ,चन्द्रकला में तथा श्रीकैयट ने भी विचार किये हैं। किन्तु हमारे मत में श्रीनागेशभट्ट का मत ठीक नहीं लगता है, क्योंकि 'स्याद्' अभ्यादान मुद्घात आरम्भः (३।२।२६) अमरकोष, 'अभ्यदानं प्रारम्भः' (काशिका) 'अभ्यादान का भट्टोजीदीक्षित वृत्ति ही उचित प्रतीत होती है। वैयाकरणों को उन्हीं ग्रन्थों में यह विषय तथा 'ओम्' के उच्चारण के लिए तीन पक्ष हैं इनको भी देखें। (सनातन धर्मवलम्बत्वात)

आयुर्वेद में भी 'अभ्ययनाध्यापनविधि' के प्रकरण में अध्ययनकाले शिष्याय गुरुः शुचिरुद्धतहस्तः शुचौ देशे तब्दच्छिस्यायावहिताय अथ शब्दमोंकारं वा पूर्वं प्रयुज्य महाव्याहृतीरनूच्य सावित्रीं च त्रिरभ्यस्याऽधीष्व भो इत्युक्वा इति। (सु० सू० ३, का० सं०)

महर्षि वेदव्यास अपने पुत्र शुक को अध्यात्म का उपदेश करके अन्त में उपसंहार करते हुए कहते हैं कि—

दशेदमृक्सहस्राणि निर्मथ्यामृतमद्भुतम्।
नवनीतं यथा दध्नः काष्ठादग्निर्यथैवच।
तथैव विदुषां ज्ञानं पुत्रहेतोः समुद्धृतम्। (म० भा० शा० २४६-१४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थ—दश सहस्त्र ऋचाओं का मन्थन करके मैने यह अद्भुत अमृत निकाला है। मक्खन जैसे दही से और अग्नि जैसे काष्ठ से मन्थन करके निकाली जाती है। उसी तरह विद्वान् ब्रह्मवेत्ताओं का ज्ञान 'ओम्' रूप पुत्र के लिए निकाला है।

आचार्य कात्यायन ने ऋग्वेद के देवता (प्रतिपाद्य विषय) का निर्देश करके सर्वानुक्रमणी ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखा है--

समस्तानां प्रजापतिः ओंकारः सर्वदेवत्यः परमेष्ठयो ब्राह्मो वा दैव आध्यात्मिक्यः।

हरिः ओम्—

वेदों का विषय यज्ञ है। 'चत्वारों वै वैदाः तैर्यज्ञस्तायते' (अथर्ववेद गोपथब्राह्मण १।४।२४) यज्ञं व्याख्यास्थामः। स त्रिभिर्वेदैर्विधीयते (सत्याषाढ़ सू० १।१) आदि। यज्ञों में सोम का वहुत उपयोग होता था, यह वैदिक संसार में सर्वथा प्रसिद्ध है। वेद में सोम शब्द के लिए हरि शब्द का उल्लेख हुआ है। यथां हरि... गोभिरावृतम्[1] (ऋ०सं० ९।८६।२७) यहाँ 'सोम' को हरि कहा है। इसका विस्तृत वर्णन सामवेद (कौ०) संहिता पवमान पर्व। एवं ऋग्वेद (शाकल) संहिता से नवम मण्डल के पवमान सोम के सूक्त देखने चाहिए। याज्ञवल्क्यस्मृति (३।५।३०६), ओंकाराभिष्ठुतं सोमसलिलं पावनं पिवेत्, इस श्लोक के अनुसार 'ओंम' से अभिमन्त्रित सोम के पीने से पवित्रता होती है, तथैव सोम अर्थवाले 'हरि' शब्द पूर्वक 'ओम् के उच्चारण करने से पवित्रता होने पर वेदारम्भ में 'हरिः ओम्' उच्चारण किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'हरि' शब्द से भगवान् श्रीकृष्ण-विष्णु भी माने जाते हैं। इसके प्रमाण में श्रीगीताजी में १ 'अधियज्ञोऽहमेवात्र' इसकी व्याख्या में भगवान् श्रीशङ्करस्वामी के शब्द हैं 'अधियज्ञः सर्वयज्ञाभिमानी देवता विष्वाख्या 'यज्ञो वै विष्णुः। इतिश्रुते', स हि विष्णरहमेव इति। इन्हीं शब्दों में श्रीमधुसूदन सरस्वती ने भी कहा है। यथा 'स च विष्णरधियज्ञोऽहं वासुदेव एव न मद्‌भिन्नः कश्चिदिति' (८।४) २ 'वैदेश्च सर्वैरहमेव वेद्यः' (१५।१५)। ३ 'सोमो भूत्वा रसात्मकः (१५। १२)। ४ 'अहंहि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च'। (६।२४) इनमें क्रमशः १ भगवान् यज्ञाधिष्ठाता-देव हैं। २ सभी वैदिक शब्दों से अपनी ही वेद्यता-कही है। ३ रस स्वरूप-सोम भगवान् ही हैं। ४ सर्व यज्ञों के भोक्ता प्रभु ही हैं। इत्यादि।

ब्रह्मसूत्र (२।३।२२) के माध्वभाष्य में 'एकशब्दैर्द्विशब्दैश्चबहुशब्दैच केशवः। एक एवोच्यते वेदैस्तावता नास्यभिन्नता'। उद्‌धृत इस भविष्यपुराण के वचन में भी वेद के शब्दों से भगवान् श्रीकृष्ण का ही बोध होता है। अतः हरिः' यह श्रीकृष्ण का वैदिक नाम है।

कुछ विद्वान् 'हरि-गोमिरावृतम्' इस मन्त्र में 'हरि' शब्द से गौओं से आवृत हरि 'कृष्ण' अर्थ करते हैं। इसके प्रमाण में 'ता वां वस्तूनि उश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः। अत्राह तदुरु गायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि' (ऋ० सं० १।१५४।६) इस मन्त्र के 'वृष्णः—वृष्णिवंशीयस्य'। 'वृष्णे.' के स्थान में छान्दस इकार लोप के कारण 'वृष्णः' हो जाता है। अर्थात् जिसमें 'भूरिशृङ्गा अयासः गावः' बड़े सींगोंवाली गमनशील गायें हैं, वह उरु गाय सर्वस्तूयमान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वृष्णिवंशीय-श्रीकृष्ण का परमधाम गोलोक सुशोभित होरहा है। उसी गोलोक की हम इच्छा करते हैं। निरुक्त की टिप्पणी में म० म० स्व० पं० श्रीशिवदत्तजी ने भी यही अर्थ किया है—

'उरुगायस्य—बहुभिर्गीयमानस्य स्तुत्यस्य, वृष्णः—इत्यत्र। वृष्णि शब्दस्य अन्त्यस्य इकारस्य छान्दसे लोपे अङ्गीकृतेवृष्णिकुलोत्पन्नस्य (वृष्णिवंशे-अवतीर्णस्य) श्रीकृष्णाख्यस्यविष्णोः परमं पदं स्थानं 'व्रज' नामकं इत्यपिगूढोऽभिप्रायः। निरुक्तरीत्या गोलोकस्य प्रतीतिर्भवत्येव— इतिगोलोक एव व्रजमण्डलम्—इति सर्वेषामास्तिकानां सिद्धान्तः। 'मथुरा भगवान् यत्र नित्यं संन्निहितो हरिः' इत्युक्तेः।

कुछ विद्वान् 'हरिः ओम्' में सामने स्वरप्रत्यय या अवसान न होने से बिसर्ग की प्राप्ति ही नहीं, अतः या तो 'हरिरोम्' अथवा 'हरिःओम्' व्याकरणानुसार अशुद्ध कहा जावे। इसके समाधान में व्याकरण में वाक्य संस्कार पक्ष तथा पदसंस्कार पक्ष भेद से दो पक्ष हैं। 'हरिःओम्' यह पदसंस्कार पक्ष है। 'हरिः' यह विसर्गान्त पद आने पर पुनः सामने 'ओम्' आने पर 'जातः संस्कारो न निवर्तते' इस न्यायानुसार अथवा 'अकृतव्यूहाः पाणिनीयाः' परिभाषा से विसर्गों को कुछ नहीं होने से यह अशुद्ध नहीं है।

ओम्—वेद के अध्ययन के प्रारम्भ और अन्त में 'ओम्' का पढना मनुस्मृतिकार ने २।७४) नें आवश्यक माना है। यह ब्रह्म का सर्वश्रेष्ठ नाम है, यह (कात्यायनकृतसर्वानुक्रमणी ४।१) में कहा है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री मङ्गलमूर्तये नमः

भक्तियोग—

'भक्ति' 'पद' 'भज सेवायाम्' धातु से 'स्त्रियां क्तिन्' इस पाणि-नीय सूत्र से क्तिन्' प्रत्यय होकर होता है। 'पूज्येष्वनुरागो भक्तिः (देवीभागवत ७।३७) पूज्य वर्ग में अनुराग का नाम भक्ति है। इस सिद्धान्तानुसार यह अनुरक्ति भगवद् विषयिणी, शास्त्रविषयिणी, मातृपितृविषयिणी राष्ट्रविषयिणी. गोब्राह्मणसाधुमहात्मा विषयिणी आदि होने पर भक्तिपदवाची होती है।

'भजनं भक्तिः, भज्यते अनया इति भक्तिः. भजन्ति अनया इति वा भक्तिः, इत्यादि 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्तियाँ व्याकरण शास्त्रानु-सार होती हैं। परमतत्व 'आत्मा' अथवा भगवान् के साक्षात्कार के लिये 'भक्ति' का स्थान बहुत ही उन्नत है। 'भगवति मनः स्थिरीकरणं भक्ति' सातृ कर्म ज्ञानेभ्योऽप्यधिका मता (भक्तिसूत्र) इसी को श्री मधुसूदनसरस्वती ने भक्ति के लक्षणों से अधिक स्पष्ट किया है—'द्रवी-भावपूर्विका मनसो भगवदाकारतारूपा सविकल्पक वृत्तिर्भक्तिः'। तथा भक्तिरसायन (१।३) में द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता। सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते'। अर्थात् – भगवद्भाव से द्रवित होकर भगवान् के साथ मन के सविकल तदाकारभाव को 'भक्ति' कहते हैं। भगवद्गुण के श्रवण से प्रवाहित होने वाली अविच्छिन्न भगवद्विषयिणी तैल धारावाहिक वृत्ति को ही 'भक्ति' कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवर्षि नारद ने नारद भक्ति सूत्र २ में 'सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च' इन शब्दों से भगवान् के प्रति परमप्रेमस्वरूप अमृत-स्वरूप को ही भक्ति कहा है।

इसी तरह ईश्वर के प्रति परम—अनुराग को ही 'सा परानुरक्ति-रीश्वरे (शाण्डिल्यसूत्र १।१।२) में भक्ति कहा है। अर्थात्—परमात्मा में अविचल तथा ऐकान्तिक भावना एवं आत्मसमर्पण की उत्कट आका-ङ्क्षा का नाम भक्ति है।

'नारद पञ्चरात्र' में तो 'मुक्ति' से भी 'भक्ति' को अधिक महत्व देते हुए। ये शब्द लिखे हैं—

हरिभक्तिर्महादेव्याः सर्वा मुक्त्यादिसिद्धयः।
मुक्तयश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः।
तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः...

श्रीमन्मध्वाचार्य ने भी भक्ति का इस तरह प्रतिपादन किया है—

माहात्म्यज्ञानपूर्णस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्ति रिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्नचान्यया।

अर्थात् अपने आराध्य देव की महिमा जानते हुए अपने स्त्रीपुत्रादि परिवार की अपेक्षा अधिक एवं दृढ़ तर भगवान् पर स्नेह रखना ही 'भक्ति' है।

श्रीमच्चैतन्यमहाप्रभु ने भी 'श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुत्रार्थो महान्' के अनुसार 'श्रेयःस्तुतिं भक्तिमुदस्यते विभो, क्लिश्यन्ति ये केवल वोधलब्धये (श्री० भा० १०।१४।४) में भक्ति ही श्रेयका मार्ग

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहा है। श्री शंकराचार्य ने भी—मोक्षकारणसामग्र्यां भक्ति रेव गरीयसी '(वि. चू.) पुनः 'सर्ववेदान्तसिद्धान्तसार' में भी—

यस्य प्रसादेन विमुक्तसङ्गाः।
शुकादयः संसृति बन्धमुक्ताः।
तस्य प्रसादो बहुजन्मलभ्यो
भक्त्येकगम्यो भवमुक्तिहेतुः।

'भक्त्येकगम्यः' इस पद से स्पष्ट होता है कि केवल भक्ति ही मुक्ति का वास्तविक कारण है।

प्रबोधसुधाकर में भी–शुद्धयति हितान्तरात्मा कृष्णपदाम्भोजभक्तिभृते। वसनमिव क्षारोदैर्भक्त्या प्रक्षाल्यते चेतः।

श्रीकृष्ण के चरण कमलों की भक्ति के विना अन्तः करण शुद्ध नहीं होता है। विवेक चूड़ामणि में—भक्ति की परिभाषा अधिक स्पष्ट की है—

स्वस्वरुपानुसन्धानं भक्तिरित्यभीधीयते।
स्वात्मतत्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः।

भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्ति रधोक्षजे :
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति।

(श्री. भा. १।२।६)

भक्तिमिसांसासूत्र में—'भक्तिर्मनस उल्लासविशेषः' रसस्तु तत्सामग्रीत उत्पत्तेः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदपञ्चरात्र में - भक्ति की संज्ञा के विषय में ऐसा कहा है—

सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् ।
हृषीकेण हृषिकेशसेवनं भक्तिरुच्यते ।

पुराणोत्तर युग में भक्ति के सर्वश्रेष्ठ विश्लेषणकारी श्रीपाद गोस्वामी के मत में—

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृत्तम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ।

अन्य अभिलाषा से शून्य, ब्रह्मज्ञान तथा फलयुक्त नित्यनैमित्तिक कर्म आदि से अनावृत्त, कृष्ण में रुचियुक्त प्रवृत्ति के साथ कृष्णानुशीलन ही उत्तम भक्ति है।

नारद शाण्डिल्य प्रभृति भक्तितत्व के प्रमुख व्याख्याताओं के अतिरिक्त ज्ञानमार्ग समर्थक व्यास सूत्र भाष्यकारों ने भक्ति के सम्बन्ध में अनेक स्पष्ट संकेत दिये हैं । उपरिनिर्दिष्ट वाक्यों के उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है ।

भक्ति की एक यह विशेषता हैं, वह हमारे लक्ष्य की प्राप्ति के निमित्त अत्यन्त सहज तभी हो सकती है, जब 'अहैतुक्य व्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे' (भा० ३।२९।१२) इस सिद्धान्तानुसार निर्हेतुक, निष्काम तथा निरन्तर ईश्वर के प्रति निरतिशय प्रेम पूर्वक हो ।

अध्यात्मशास्त्रों में प्रतिपादित -

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसंनित्यमगन्धवच्चयत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसका वर्णन कठ ३, १५, वे० सू० ३-२, २२, ३० में है। म० भा० ३३६, २१-२८ में भगवान् ने नारद जी को अपना स्वरूप अदृश्य, अघ्रेय, अस्पृश्य, निर्गुण, निरवयव आदि बतलाते हुए सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय करने वाला त्रिगुणातीत परमेश्वर ही वासुदेव परमात्मा है।

यह अध्यात्मशास्त्र प्रतिपादित परमनिष्कामता का तत्व ऐसी भक्ति में रह सकता है।

श्रीचैतन्य देव की प्रार्थना देखिये—(शिक्षाष्टक ४)

न धनं न जनं न सुंदरीं कवितां वा जगदीश ? कामये
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि।
नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ।।

यहां ईश्वर में अहैतुकी भक्ति की कैसी अद्भुत कामना है। इसलिये भगवान् की कृपा पर स्वीकृति पूर्वक विश्वास कर के आत्मसमर्पण करना ही भक्ति है। इसी को महर्षि शाण्डिल्य एवं देवर्षि नारदजी ने मा परानुरक्तिरीश्वरे' (शा० १।१।२) सा त्वास्मिन् परमप्रेमरूपा' (ना० भ० २) में 'परानुरक्ति' तथा परमप्रेमस्वरूपा शब्दों से स्पष्ट किया है। यह प्रेममयी भक्ति समस्त कामनाओं का अभाव करके भक्त के हृदय को ईश्वर के प्रेम में भर देती है। यह विशुद्ध प्रेम गुण और कामना रहित होकर प्रतिक्षण वर्द्धित होता हुआ अविच्छिन्न-सूक्ष्मतर-अनुभवरूप हो जाता है।' गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् नारदभक्तिसूत्र ५४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भक्ति के भेद—

१ परा या मुख्या भक्ति। २ गौणी भक्ति। इन में परा भक्ति को प्रमा भक्ति भी कहते हैं। गौणी भक्ति गुण भेद से अथवा आर्तादि भेद से तीन प्रकार की होती है।

'गौणी त्रिधागुणभेदादार्तादिभेदाद्वा (ना० भ० सू० ५६) इन में प्रेमा भक्ति को ही अहैतुकी निर्गुण भक्ति तथा श्रीगीता जी में ज्ञानी की भक्ति कहा है। इसका वर्णन श्री भागवत (३ २६ ११ १२) में हुआ है।

वैदिक दृष्टि से भक्ति का स्वरूप—

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के द्वारा ज्ञान, उपासना या स्तुति प्रार्थना इन तीनों का सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान वैदिक मन्त्रों से मिल जाता है।

भक्ति में इन तीनों का समन्वय हो जाता है इन त्रितय का समन्वय ही वेदोक्त भक्ति का आदर्श है। परमात्मा की भक्ति का अर्थ है उनके गुणों को अपने भीतर धारण कर के तद्वत् होना। यथा— 'यद्देवा अकुर्वंस्तत्करवाणि' अर्थात् देवों ने जो कुछ किया है उसी को मैं भी करूं' भक्त को अपने पूज्य में पूर्ण विश्वास होता है. क्योंकि भक्ति भावना ईश्वर के अस्तित्व पर ही आश्रित है। भगवान् ही उस का माता पिता है, वह प्रेमविह्वल होकर प्रभु का स्मरण करता है—

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे। (अथर्व २०।१०८।२)

हे इन्द्र ! आप ही हमारे माता पिता हैं, इसलिए आप से सुख की इच्छा करते हैं। परमेश्वर अपने भक्तों की हर तरह से रक्षा करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

'नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।'

परा भक्ति—

परा भक्ति के ही पर्यायवाची शब्द हैं—अनन्यभक्ति, अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्त भक्ति तथा फल भक्ति।

इस भक्ति का उन्मादपूर्ण स्थिति का हृदयग्राही वर्णन स्वयं प्रबुद्ध ने इस तरह किया है—

क्वचिद् रुदन्त्यच्युतचिन्तया क्वचिद्,
धसन्ति नन्दन्ति वदन्त्यलौकिकाः।
नृत्यन्ति गायन्त्यनुशीलयन्त्यजं,
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः।
(श्री० भा० ११।३।३)

भक्ति के भेद—सगुणा-निर्गुणा।

श्रीमद्भागवत (३।२९।७–१०) में सगुणा और निर्गुणा भेद से भक्ति के दो विभाग किये हैं। सगुणा भक्ति तामस, राजस और सात्विक भेद से तीन प्रकार की होती है। ये तीनों प्रकार की भक्ति गौणी भक्ति हैं, क्योंकि ये तीनों ही प्रकार भेद ज्ञान द्वारा प्रभावित तथा स्वभावज प्रवृत्ति द्वारा अनुप्राणित हैं। सात्विकी भक्ति उत्तमा होने पर भी सर्वोत्तमा नहीं होती। इससे भी मोक्ष आदि की इच्छा तथा भेद दर्शन भी रह सकता है। मोक्ष, कामना, त्याग करके एकमात्र भगवान् ही काम्य वस्तु हो जाते हैं, तब उस स्थिति में भक्ति में 'निर्गुणा-अहैतुकी भक्ति या प्रेम' कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मद्‌गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वं गुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ।
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ।

श्री० म० भा० (३।२६।११-१२)

सागर में स्वतः प्रवाहित गङ्गा के जल की धारा के समान मनोगति मेरे गुण श्रवण मात्र से फलानुसन्धान रहित भेद दर्शन विहीन होकर सर्वान्तर्यामी मुझ पुरुषोत्तम में अविच्छिन्न भाव से निहित होती है. वह मनोगतिरूपा भक्ति ही निर्गुण भक्ति योग का स्वरूप है। यह अहैतुकी निष्कामा भक्ति ही 'प्रेम' है। इसकी प्राप्ति होने पर मुक्ति की भी इच्छा होती है।

सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ।

(श्री० भा० ३।२९-१३)

जिनको इस प्रकार की निर्गुणा भक्ति प्राप्त हो जाती है, उनको सालोक्य, सार्ष्टि (ईश्वर के सदृश ऐश्वर्य समानता) सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य ये पञ्चविध मुक्ति मिलने पर भी वे मेरी सेवा के बिना अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करते हैं।

पुराणों में भक्ति—

भक्ति योग मनुष्य के लिये तत्काल कल्याण कारक है एवं भक्ति मार्ग का अनुसरण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, नर नारी समस्त निर्विशेष रूप से सहज ही कर सकते हैं—(देवी भा० ७।३७।२-३)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नराधिपं ।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम ।
त्रयाणामप्ययं योग्यः कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा ।
सुलभत्वान्मानसत्वात् कायचित्ताद्यपीडनात् ।

यहाँ स्पष्ट किया है कि—मोक्षप्राप्त्यर्थ कर्मयोग, ज्ञानयोग, तथा भक्ति योग—ये तीनों ही मार्ग विख्यात हैं। इन तीनों प्रकार के योगों में भक्तियोग ही अनायास प्राप्त हो सकता है क्योंकि यह योग काय-चित्त आदि को पीडित न करता हुआ केवल मनोवृत्ति द्वारा सम्पादित हो सकता है, अतः यह योग ही सुलभता से करने के योग्य है।

श्रीमद्भागवत में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव जी को यही उपदेश दिया है—(११-२०-३३-३२)

यत् कर्मभिर्यत् तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत् ।
योगेन दानधर्मेण श्रेयोभिरितरैरपि ।
सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽञ्जसा ।

कर्म, तप, ज्ञान, वैराग्य, योग, दान, धर्म एवं इतर तीर्थयात्रा, व्रत आदि श्रेय साधक साधनों द्वारा अनायास मेरे भक्त प्राप्त कर सकते हैं।

ईश्वर—जिसके द्वारा जगत् का जन्म, स्थिति तथा लय होता है, वह ईश्वर है। 'जन्माद्यस्य यतः' (ब्रह्मसूत्र १ अ०, १ पाद २ सूत्र)। यह ईश्वर अनन्त, शुद्ध, नित्ययुक्त, सर्व शक्तिमान्, सर्वज्ञ, परमकारुणिक, गुरु का गुरु है (पातञ्जल समाधिपाद २५, २६)। यह ईश्वर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सबके ऊपर 'अनिर्वचनीय प्रेम स्वरूप' है 'स ईश्वर अनिर्वचनीय प्रेम-स्वरूपः' (शाण्डिल्य सूत्र)।

श्वेताश्वरोपनिषद् में—

देवस्यैषा महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम्।
न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके नचेशिता नैव न तस्य लिङ्गम्।
न कारणं करणाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधियः।

अर्थात्—ईश्वर परमात्मा, परमेश्वर जो समस्त जगत् में व्याप्त है, जिससे यह सृष्टि चक्र घुमाया जाता है, जिसका न कोई पति है, न परिचालक है, न उत्पादक है इत्यादि।

ईशावास्योपनिषद् में भी—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। इति।
ईशमेवाहमस्त्यर्थी न च मामीशते परः।
ददाम्मि च सदैश्वर्यमीश्वरस्तेन कीर्तितः।

श्रीमद्भागवत में—(१०।१४।२३)

एकः स आत्मा पुरुषः पुराणः
सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः
पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः।

अर्थात्—यह एक ही आत्मा, पुराण, पुरुष, सत्य, स्वयं प्रकाश स्वरूप, अनन्त, सबका आदि कारण, नित्य, अविनाशी, निरन्तर सुखी, माया से निर्लिप्त, अखण्ड, उपाधि से रहित तथा अमर हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पूर्ण वेद, स्मृति, पुराण के इसी तत्व को गोस्वामी श्री तुलसी दासजी ने ऐसे कहा है—

व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी,
सत चेतन धन आनंद रासी।
आदि-अन्त कोउ जातु न पावा।
मति अनुमान-निगम यश गावा।
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना।
कर बिनु कर्म करै विधि नाना।
आनन रहित सकल रस-भोगी।
बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी।
तनु बिन परस नयन बिनु देखा।
ग्रहै घ्राण बिनु वास अशेखा।
अस सब भाँति अलौकिक करणी।
महिमा तासु जाइ किमि बरणी।

परमार्थ भेद परमात्मा के निराकार और साकार भेद से दो रूप हैं। निराकार रूप में वह सर्वव्यापक है। साकार रूप में ब्रह्मरूप से वैकुण्ठलोक में, विष्णुरूप से, रुद्रलोक में (कैलाश) में शङ्कर रूप से विराजमान है। यथा अग्नि-निराकार रूप से सर्वत्र व्यापक है तथा साकार रूप से सांसारिक कार्यकर रही है। इसी तरह ही परमेश्वर प्रलयावस्था में निराकार तथा जगत् की उत्पत्ति एवं पालन कार्य के लिये साकार रूप में होता है। निराकार का—'अनिर्वचनीय' या

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सर्वजन दुर्बोध्य आकारवाला' अर्थ है। 'निराकार' शब्द में स्थित 'निर्' परमात्मा के आकार का सर्वथा निषेधक नहीं। वेद में परमात्मा के लिये प्रयुक्त हुआ 'नेति नेति' (बृहद्दार ४। ६।४।२२ शब्द परमात्मा के अभाव को नहीं कहता है. किन्तु उसके आकार की 'अनिर्वचनीयता' ही 'निर्' शब्द से द्योतित होती है। यदि 'निराकार' में 'निर्' शब्द सर्वथा 'अभाव' अर्थवाला मानें तो, परमात्मा में शून्यता की प्रसक्ति हो सकती है। परन्तु इष्ट नहीं है।

अथर्ववेद के रुद्रसूक्त (२११२।१५) में परमेश्वर को सोपाधिक साकार रूप मानकर 'ओं नमस्ते ऽस्त्वायते, नमो अस्तु परायते। नमस्ते रुद्र ? तिष्ठत आसीनापोत ते नमः।' इस मन्त्र से भक्त भगवान् को प्रेम से बुलाता है, भगवान् कृपानिधान ? पधारिये मेरे प्रणाम स्वीकार कीजिये। तथा 'यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः (अथर्व ११।२।११) तत्र चतस्त्रः प्रदिशश्च (११।२।१०) येऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्ठम्भितः (अथर्व ११।२।२३) इन मन्त्रों में आने वाला, खड़ा रहने वाला, बैठने वाला, जाने वाला साकार परमेश्वर ही हो सकता है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने कहा है कि—

एक दारुण देखिए एक पावक युग सम ब्रह्म विवेक।
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्णय ब्रह्म सगुण भये कैसे।

जैसे एक अग्नि अव्यक्त रूप से लकड़ी आदि में रहती है, तथा एक अग्नि दीपक आदि में व्यक्त रूप से प्रतीत होती है, वैसे ही ब्रह्म भी निराकार अव्यक्त रूप से सर्व व्यापक है, विश्वात्मा है, सब में बैठा है और वही भक्तों के लिए साकार रूप से अभिव्यक्त हो जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिस तरह सरोवर के जल से प्रकट होकर कमल सरोवर की शोभा बढ़ाते हैं उसी तरह निराकार परब्रह्म से प्रकट हुए साकार विग्रह निराकार ब्रह्म की ही महिमा बढ़ाते हैं।

अवतार के सिद्धान्त को भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने २ ग्रन्थों में प्रतिपादन किये हैं। उनमें सिद्धान्तवादी भगवच्छङ्कराचार्य जी ने श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य के उपोद्घात में भगवान् श्रीकृष्ण को भगवान् आदिपुरुष नारायण का अवतार कहा है—

संसार के परम कल्याण के लिये ही भगवान् अवतार लेते हैं जैसा श्रीमद्भागवत में श्रीब्रह्माजी के वचन हैं—

दीर्घेण कालेन अनुष्ठातृष्णां......आदिकर्ता नारायणा ख्यो विष्णु......अंशेन कृष्णः किल संबभूव इत्यादि।

सुरेष्वृषीष्वीश तथैव नृष्वपि
तिर्यक्षु यादस्वपि तेऽजनस्य।
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय,
प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च।
को वेत्ति भूमन्? भगवन्! परात्मन्।
योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम्।
क्व वा कथं वा कति वा कदेति।
विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम्।

अद्वैत सिद्धि ग्रन्थकार श्रीमधुसूदन सरस्वती जी निराकार-निर्गुण ब्रह्म की उत्पत्ति नामक 'प्रकरण में' साकार सगुण ब्रह्म का इस तरह वर्णन करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वंशी विभूषित करान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुणबिम्ब फलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दु सुन्दर मुखादरविन्दनेत्रात्,
कृष्णात्परं किमपि तत्वमहं न जाने ।

श्री स्वामीजी महाराज श्री कृष्ण भगवान् के परम उपासक भक्त थे, उनकी मान्यता थी कि—साकार-सगुण ब्रह्म की उपासना बिना किये कोई भी साधक निराकार-निर्गुण ब्रह्म का तत्वज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। यह भी स्थिर सिद्धान्त है कि—साकार स्वरूप के परिचय द्वारा ही निराकार स्वरूप का परिचय प्राप्त होता है, इसी को उपनिषदों में बहुत स्पष्ट किया है, यथा—'द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तञ्चामूर्तञ्च' (बृ० २।३।१) अर्थात् ब्रह्म के दो रूप हैं, एक मूर्त (व्यक्त-साकार) दूसरा अमूर्त (अव्यक्त-निराकार)। साकार परमेश्वर की उपासना द्वारा ही ऐहलौकिक, पारलौकिक तथा पारमार्थिक, नानाविध फल प्राप्त होते हैं। कल्याण मार्गाभिलाषियों के लिये साकार-सगुण ब्रह्म की आराधना अत्यन्त अवलम्बन है। इस साकार प्रभु में भी अव्यक्त, निराकार, निर्गुण, सर्वात्मा के अनुत्तम अव्यय भाव बने रहते हैं, जैसे अति शीतलता के कारण जल का बरफ हो जाना तथा बरफ हो जाने पर भी उसमें जल का अभाव नहीं होता है, तद्वत् भक्तों के ऊपर दया करने के लिये अव्यक्त निराकार भगवान् साकार-व्यक्त रूप से अवतीर्ण होते हैं। केनोपनिषद् (१।५) में 'तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' उस ही ब्रह्म को तू जान, जो निर्विशेष परात्पर

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शुद्ध है। जिसकी भक्त लोग उपासना करते हैं, वह सविशेष-सगुण साकार है।

एक ही सच्चिदानन्द स्वरूप प्रेममय भगवान् है, यही सगुण तथा निर्गुण दोनों ही हैं। इसका सर्वदा ध्यान करना चाहिये कि भक्त के उपास्य देव सगुण ईश्वर ब्रह्म से विभिन्न नहीं है। सब कुछ वही 'एक-मेवाद्वितीयम्' ब्रह्म है।

सगुण-ईश्वर—

'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।' (४-१६)

अन्त में विनम्र भाव से उन सबके प्रति आभार प्रकट करना अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूँ जिन ग्रन्थों के उद्धरण इसके सम्पादन में उद्धृत किये हैं तथा उन महात्मा विद्वानों का भी मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपनी अमूल्य सम्मति देकर इस कार्य में सहयोग प्रदान किया।

इसके सम्पादन में जो कुछ भी स्खलन हुआ हो उसको उदारहृदय गुणैकपक्षपाती विद्वान् क्षमा करेंगे। मेरे अनुज भ्राता वैद्य चि० हरिवक्ष भेड़ा आयुर्वेदाचार्य ने इसके प्रूफ शोधन में मेरे को पूर्ण सहयोग दिया है, इसलिए उनके लिये मङ्गलकामना करता हूं।

भगवच्चरण चञ्चरीकः

वैद्य कन्हैयालाल भेड़ा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीकृष्णः शरणं मम

श्रीमद्भगवद्गीता

ईश्वरोपासनोपनिषत्

सगुणेश्वरोपासना—निर्गुणात्मोपासनयोर्विवेकजिज्ञासा

द्वादशोऽध्यायः

भक्तियोगः

अर्जुन उवाच—

अर्जुन—शब्द का अर्थ ही 'ऋजु' अथवा सरल स्वभाव वाला है। उसके मन में जो कुछ भी विचार या विकार आवे, उन सबको दिल खोल कर भगवान् के सामने रख देना। मन में कुछ भी छिपा कर नहीं रखना।[1]

---

१. यद्यपि कोशतः व्याकरणतश्च अयमर्थो न प्रसिध्यति, तथापि महाभारत विराट्पर्वणि उत्तरेण अर्जुनस्य दशनाम्नां अर्थे पृष्टे अर्जुनः स्वयमेव 'अर्जुन शब्दार्थं कथयति—' करोमि कर्म शुक्लं च तस्मान्मामर्जुनं विदुः (८४३।२०) इति। अत्र' ऋजु-गतिस्थानार्जनेषु' इत्यत उनन् प्रत्यये भवति·······समत्वात् शुद्धकर्मकरत्वात् च अर्जुन इत्यर्थः—इति नीलकंठी। पशुपति सङ्ग्रामोपार्जित यशोविभूतिभिरर्जुनं पाण्डुरं सम्पादितं विश्वं येन सोऽयमर्जुनः। (पैशाचभाष्यम्)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्जुन के विषय में कुरुराज सञ्जय ने पाण्डवों के राजसूय का वर्णन करते समय अपने पिता महाराजा धृतराष्ट्र के सामने ये विचार प्रकट किये थे।

आत्मा हि कृष्णः पार्थस्य कृष्णस्यात्मा धनञ्जयः।
यद् ब्रूयादर्जुनः कृष्णं सर्वं कुर्यादसंशयम्। १।
कृष्णो धनञ्जयस्यार्थे स्वर्गलोकमपि त्यजेत्।
तथैव पार्थः कृष्णार्थे प्राणानपि परित्यजेत्। २।

(महा० सभा० ५२।३१-३३)

अर्थात्—श्रीकृष्ण अर्जुन के आत्मा हैं और अर्जुन श्रीकृष्ण के आत्मा हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण को जो कुछ करने को कहते हैं, श्रीकृष्ण निःसन्देह वही सब करते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन के लिए दिव्यलोक का भी त्याग कर सकते हैं और वैसे ही अर्जुन श्रीकृष्ण के लिये प्राणों का परित्याग कर सकते हैं, इन वाक्यों से भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन में पूर्ण अभिन्नता थी तथा उनमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं था, इस बात को विपक्षियों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

श्री शङ्कराचार्यजी ने—जो शुक्ल स्वच्छ-शुद्ध अन्तरात्मा स्वभाव वाला हो, अर्थात् पवित्र अन्तःकरणयुक्त हो उसका नाम अर्जुन है ऐसा अर्थ किया है। "अर्जुनः शुक्लान्तरात्मस्वभावो विशुद्धान्तः करण इति। अहश्च कृष्ण महरर्जुनं च (ऋ० सं० ६।९।१) इति दर्शनात्"। (गीता १८–६१)

शतपथ ब्राह्मण में यह श्रुति मिलती है—'अहस्तु कृष्णं अहरर्जुनं च' अर्थात् श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों ही दिवस स्वरूप हैं। दिवस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तम का विरोधी है— 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्' दिवस और सूर्य प्रकाश एवं ज्ञान के प्रतीक हैं। यह सूर्य की महिमा से स्पष्ट हो जाते हैं। प्रकाशमय एवं ज्ञान स्वरूप होने से श्रीकृष्णार्जुन दिवसरूप हैं। ऋजुता, सरलता एवं साधुता आदि तो 'अर्जुन' नाम में स्वभावतः प्राप्त है ही।

निष्कर्ष—कुछ दिवस तो ऐसे होते हैं जो मलिन होते हैं और कुछ दिवस विशुद्ध होते हैं। यहाँ अर्जुन इस सम्बोधन को अर्जुन की अन्वर्थ संज्ञा के रूप में अभिव्यञ्जित करते हुए भगवान् श्रीशङ्कराचार्य ने अर्जुन विशुद्ध अन्तःकरण वाला पुरुष है। ऐसा स्पष्ट किया है।

पुराणों में श्रीकृष्ण और अर्जुन को नारायण और नर का अवतार माना जाता है। अर्जुन नारायण का सहयोगी सखा नर है। अर्जुन उसी तरह नरतत्व का प्रतिनिधि है, जिस तरह कृष्ण नारायण तत्व के। नर नारायण ऋषि सृष्टि के आरम्भ से हिमालय पर तपश्चर्या कर रहे हैं। वे एक दूसरे के सखा हैं।

नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये (भागवत ११।७।१८)
नारायणो नरश्चैव तत्वमेकं द्विधाकृतम् । (म० भा०)

मित्रता के शास्त्रवर्णित लक्षणों का मूर्तिमान् स्वरूप श्रीकृष्णार्जुन की मैत्री में ही है।

मित्र के हित में ही अपना हित समझना, मित्र को विपत्ति से बचाने के लिये पहले से ही सावधान रहना, उत्तम से उत्तम स्थिति पर पहुँचा देना आदि समस्त लक्षण श्रीकृष्ण के सख्य में मिलते हैं।

इस मित्रता का परिचय महाभारत के अनेकस्थलों पर वर्णित हुआ है। यथा—

गन्धमादन हिमालय का एक श्रृङ्ग है, इसी श्रृङ्ग पर बदरिकाश्रम नरनारायण की तपोभूमि है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बदरीसाश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते ।
बदर्य्यां तप्तवानुग्रं तपो वर्षायुतान् बहून् ।

(म० भा० वनपर्व ४०।१)

यही नर नारायण ऋषि द्वापर के शेष में अर्जुन और श्रीकृष्ण रूप से अवतीर्ण हुए थे।

नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती ।

(म० भा० भीष्म ६६।१)

ये वीरोत्तम पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन और श्रीकृष्ण, वही नर और नारायण ऋषि हैं।

नरनारायणौ यौ तौ तावेवार्जुनकेशवौ ।
विजानीहि महाराज ! प्रवीरौ पुरुषोत्तमौ ।

(म० उद्योगपर्व ६६।८२)

हे अर्जुन ! तुम दुद्धर्ष नर हो, मैं नारायण हरि हूँ। हम वही नर नारायण ऋषि हैं और कालक्रम से इस भूमण्डल में अवतीर्ण हुए हैं।

नरस्त्वमपि दुद्धर्षो हरिर्नारायणो ह्यहम् ।
काले लोकमिमं प्राप्तौ नरनारायणावृषी ।

(उद्योगपर्व)

श्रीमद्भागवत में भी श्रीकृष्ण के लीलावसान पूर्व भक्तराज श्री उद्धवजी इस तरह स्तुति करते हैं—कि पापतापक्लिष्ट मैं आज निर्विण्णचित्त से नरसखा—श्रीनारायण के शरणापन्न होता हूँ—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्विण्णधीरहमु ह वृजिनाभितप्तो
नारायणं नरसखं शरणं प्रपद्ये ।

(११।७।१८)

श्रीकृष्ण—अर्जुन के विलक्षण प्रेमभाव के वर्णन में अर्जुन की प्रशंसा करते हुए तथा अपने ही समान बतलाते हुए मेरे (सञ्जय) से कहा । सञ्जय महाभारत के समय के विद्वान् कुछ पांडवों के हितचिंतक और धृतराष्ट्र के परम विश्वसनीय पुरुष थे ।

देवासुरमनुष्येषु यक्षगन्धर्वभोगिषु ।
न तं पश्याम्यहं युद्धे पाण्डवं योऽभ्ययाद्रणे ॥१॥
बलं वीर्यञ्च तेजश्च शीघ्रता लघुहस्तता ।
अविषादश्च धैर्यञ्च पार्थान्नान्यत्र विद्यते ॥२॥

(महा० उद्योग ५६।२६।२६)

देवता, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, मनुष्य और नागों में कोई ऐसा नहीं है, जो युद्ध में अर्जुन का सामना कर सके । बल, वीर्य, तेज, शीघ्रता, लघुहस्तता, विषादहीनता और धैर्य, ये समस्त गुण अर्जुन के अतिरिक्त किसी भी इतर मानव में एक साथ नहीं मिलते हैं। इस तरह अपने मित्र की सत्य प्रशंसा करके अर्जुन को प्रसन्न करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र ने आप लोगों के लिये सन्देश देते हुए, यह भी एक सन्देश दिया है कि—

श्रीकृष्ण सच्चे मित्र हैं। राग-द्वेष से रहित होकर भी उन्होंने कहा है कि—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा।
न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे।

सात्यकि से कहा कि–मैं अपने माताजी एवं पिताजी तथा तुम लोगों की, भाइयों की एवं अपने प्राणों की रक्षा करना उतना आवश्यक नहीं मानता जितना रण में अर्जुन की रक्षा करना समझता हूँ। अर्थात्—अर्जुन के शत्रु मेरे शत्रु हैं तथा उसके मित्र मेरे मित्र हैं।

इस तरह आहार विहार में साथ रहना, प्राणपण से हित करना मित्र की छोटी से छोटी सेवा करने में भी आनन्द का अनुभव करना, अर्जुन को प्रसन्नतार्थ युधिष्ठिर को चौदह हजार उत्तम हाथी भेटस्वरूप देना[1], मित्र अर्जुन के अनुरोध से भगवान् श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा को समझाने जाना, कर्ण और अर्जुन के युद्ध में अर्जुन की रक्षा करना[2] आदि अनेक अर्जुन के प्रेम के उदाहरण हैं।

अर्जुन भगवान् के परम भक्त का परिचय सर्वाङ्गीण पाण्डित्य परिचायक–शिशुपालवध महाकाव्य में महाकवि माघ भी इस तरह देते हैं—

१—वासुदेवोऽपि वार्ष्णेयो मानं कुर्वन् किरीटिनः।
अददद् गजमुख्यानां सहस्राणि चतुर्दश।
(सभापर्व ५२।३०।३१)

२—पतेद् दिवाकरः स्थानाच्छुष्येदपि महोदधिः।
शैत्यमग्निरियान्न त्वां कर्णो हन्याद् धनञ्जय ॥१॥
यदि चैतत् कथञ्चित् स्याल्लोकपर्यासनं भवेत्।
हन्यां कर्णं तथा शल्यं बाहुभ्यामेव संयुगे ॥२॥
(महा० कर्णपर्व ८७।१०५–१०६)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिरुह्यतामिति महीभृतोदितः कपिकेतुनर्पितकरो रथं हरिः ।
अवलम्बितैलविलपाणिपल्लवः श्रयतिस्म मेघमिव मेघवाहनः ।

(माघकाव्य सर्ग १३-१८)

अर्थात्—'रथ पर सवार होइये' इस प्रकार राजा युधिष्ठिर के कहने पर अर्जुन का हस्तावलम्बन किये हुए श्रीकृष्ण भगवान् रथ पर इस प्रकार सवार हुए, जिस प्रकार कुबेर का हस्तावलम्बन किये मेघ-वाहन अर्थात् इन्द्र मेघ पर सवार होते हैं। किरातार्जुनीय महाकाव्य में अलङ्कारशास्त्र निपुण नीतितन्त्रों के प्रकाण्डपण्डित प्रौढ़ वैयाकरण महाकवि श्रीभारवि ने भी अत्यधिक अर्जुन का वर्णन किया है—

(सर्ग १३-श्लोक- ८)

स वृषध्वजसायकावभिन्नं जयहेतुः प्रतिकायमेषणीयम् ।
लघुः साधयितुं शरः प्रपेदे विधिनेवार्थमुदीरितं प्रयत्नः ।

अर्थात्—विजयसाधक वह अर्जुन का बाण वृषभवाहन शङ्कर के शर से विद्ध प्रतिपक्षी को पुनः भेदन करने की लालसा से अल्पायास से ही कार्यसाधन में इस प्रकार समर्थ हुआ, जिस प्रकार पुरुष व्यापार विधिवाक्य से प्रतिपादित यज्ञ को साधन करने में समर्थ होता है। इसी सर्ग में १-१४-१७-१९-२६ श्लोक द्रष्टव्य हैं। श्रीमद्भागवत में अर्जुन के विषय में विस्तृत वर्णन है। यथा:—पिता-पाण्डु। माता-कुन्ती। इन्द्रांशभूत। भार्या-द्रौपदी। पुत्र-श्रुतकीर्ति (न० २२-२७-२९) अन्य भार्या-सुभद्रा। पुत्र-अभिमन्यु। (३३) तृतीया—भार्या-चित्राङ्गदा। पुत्र-बभ्रुवाहन। चतुर्थी-उलुपी। पुत्र-इरावान् (३२) यतिवेश से सुभद्रा का अपहरण। (द० ८६-३-१२) कृष्ण स्तुति (प्र० ७-२२-२५) द्वारकागमन (१२-३६) युधिष्ठिर के लिए कृष्ण के परलोकगमन का वृत्तान्त कथन। (प्र० १५) इत्यादि। अर्जुन का एक सीधा भी अर्थ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

होता है—अर्जुन आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध वृक्ष है। इसमें अनेक महान् गुणों के साथ हृद्रोग हार्ट 'Heart Palpitation' की शान्ति के लिये यह परम औषधी भी है—

अर्जुनस्य त्वचासिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये।
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा। १।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा,
पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये।

हृद्रोगजीर्णज्वर रक्तपित्तम्,
हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते। (च० द०)

इसी आधार पर इस वनस्पति का अर्जुन नाम रखा गया है। साहित्यकारों ने भी इस तरह वर्णन किया है—

अग्रे दीर्घतरोऽयमर्जुनतरुः, तस्याग्रतो वर्तिनी,
सा घोषं समुपैति तत्परिसरे देशे कलिन्दात्मजा।
तस्यास्तीरतमालकाननतले चक्रं गवां चारयन्,
गोपः क्रीडति दर्शयिष्यति स ते पन्थानमव्याहतम्।

(लीलांशुक)

हे पथिक ! देखो, तुम्हारे सामने बहुत विशाल यह अर्जुन का वृक्ष है। इसके अगाड़ी पगदण्डी है, जो अहीरों के ग्राम में जाती है। उसके समीप में ही थोड़ी दूर पर कालिन्दी नदी है। नदी के तीर पर तमाल वृक्ष का वन है, उसमें गायों के समूह को चराने वाला कृष्ण वर्ण का एक गोपाल है, वह वहाँ देखोगे, वही तुमको ऐसा निष्कण्टक मार्ग दिखावेगा जहाँ जाकर फिर आना नहीं होगा।

१. भक्त अर्जुन ने अभय आदि छब्बीस दैवगुणों सहित जन्म लिया है (गी० १६–५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

२ भगवान् के भक्त तथा सखा (गी० ४-३) यह भी श्रुति कहती है "नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः" (श्वे० उ० ६-२२) तथा यह मन्त्रवर्ण भी है - "विद्याह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽह मासी। असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम्' इति।

भक्त के विषय में देवर्षि नारद का एक प्रसङ्ग में धर्मराज युधिष्ठिर से (श्रीम० भा० ७-७५-७६) श्लोकों में भी वर्णन हुआ है।

३. भगवान् की विभूतिरूप (गी० १०—३७) दया, शान्ति, अनसूया, शौच, सन्तोष, माङ्गल्य, अकार्पण्य तथा अस्पृहा ये गौतम प्रोक्त मुमुक्षु के लिये अष्टगुण युक्त श्री अर्जुन[४] में हैं।

---

१ अभयादि गुण—

अभयं सत्व संशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ।१।
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ।२।
तेजःक्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ।३।

२ भगवान् के भक्त तथा सखा—

स एवायं मयातेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।३।

३ पाण्डवानां धनञ्जयः।

४. दया सर्वभूतेषु शान्तिरनसूया शुचिरनायासो माङ्गल्यम कार्पण्यमस्पृहा चेत्यष्टादशात्मगुणाः (गी० २-१ शंकरानन्दी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१—भगवान् को अतिप्रिय (गी० १८—६५)

२ - वैराग्य शरणागतियुक्त (गी० २—७—८)

३ महामना, परमदयालु, परमबान्धवस्नेही, परमधार्मिक अर्जुन (गी० १—४७ ग० भा०)

महा० भा० सभापर्व (४४—१३—२१) श्लोकों में भगवान् ने फाल्गुन-दुर्द्धर्ष-धनञ्जय आदि नामों की प्रसिद्धि की है, इनसे ये गुण अर्जुन में है, ऐसा स्पष्ट किया है।

श्रीकृष्ण के श्रीमुख से उपदेश श्रवण का उत्तम अधिकारी श्री अर्जुन ही है।

१—

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे। (१८-६५)

२—

कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वां प्रपन्नम्।
नहि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्।

३—

सर्वथाऽहं न योत्स्यामीत्युक्त्वा बन्धुविश्लेषजनितशोक संविग्न मानसः (पार्थः) सशरं चापं विसृज्य रथोपस्थ उपाविशत्।

(रा० भ०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह नियम है कि—'यथाकारी यथाचारी (स) तथा भवति, साधुकारी साधुर्भवति, पापाकारी पापीभवति, पुण्यः पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन' (बृ० उ० ४–४–५) संक्षेप में ऐसा करने वाला एवं ऐसा आचार वाला होता है, वहाँ दैवप्रकृति के संस्कारों को शरीर प्राप्ति के समय साथ में लेकर ही जन्म धारण करने वाले प्राणि के साथ ही उत्पन्न होते हैं।

• अर्जुन ज्ञानी नहीं था, ज्ञानी को मोह नहीं होता है (गी० २–७२) ज्ञानी को कोई कर्म नहीं रहता (गी० ३–१७)

ज्ञानी को साध्य के अभाव में कोई साधन का प्रयोजन नहीं। (गी० ३–१८)

ज्ञानी जनक तथा याज्ञवल्क्य की तरह होता है।

(गी० ६-३१–मधुसू०)

देवर्षि नारद, महर्षि व्यास, भीष्मपितामह आदि से भक्त अर्जुन को भगवान् का परिचय (गी० १०–१२–१३).

चित्तशुद्धिरूपी दिव्यचक्षु बिना भगवान् के स्वरूप ज्ञान में असमर्थ अर्जुन (गी० ११–८)

पूर्वजन्म की स्मृति अर्जुन को नहीं थी (गी० ४–५, पा० यो० सू० २–३९)

भक्त अर्जुन चित्तशुद्धि के साधनरूप कर्मयोग का अधिकारी था (गी० २–४७–शा० भा० आदि)

भगवान् ही अनन्य भक्त के शरण हैं (गी० ९–२२ रा० भा० तथा नीलकण्ठ)

योगबुद्धि युक्त करके स्वकर्म में प्रवृत्त करना, पूतना, शकट, यमलार्जुन, अरिष्ट, प्रलंब, धेनुकासुर, कालिय, केशी, कुवलयापीड़, चाणूर,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुष्ठिक, तोसल तथा कंस प्रभृति का नाश करके सब का उद्धार करने वाले समस्त ऐश्वर्यादि के दाता भगवान् ही हैं (विष्णु० पु० ६-५ ७८) लीला पुरुषोत्तम परमगुरु भगवान् श्रीकृष्ण भक्त अर्जुन को निमित्त बनाकर सर्वलोक पर अनुग्रह करके समस्त वेद के सार रूप, आत्मा का यथार्थ स्वरूप तथा उसकी प्राप्ति के उपाय, कर्म, ज्ञान, भक्ति साधनों का उपदेश दिये हैं।

निष्कर्ष—जिस तरह अग्नि काष्ठ से उत्पन्न होकर काष्ठ का नाश करती है, अन्न का परिपाक करती है, मनुष्य मात्र का पोषण करती है, उसी प्रकार भक्त अर्जुन के मोहनिमित्त से उत्पन्न गीता-उपदेश अर्जुन के मोह को नष्ट किया, कार्य में परिपक्व करके निष्काम कर्म करने का मार्ग बताया, मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये पोषण दे रहे हैं तथा प्रलय पर्यन्त देते रहेंगे। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

योगवासिष्ठ में श्रीकृष्णार्जुन—आख्यान निर्वाण प्रकरण पू० सर्ग ५१ से ५८ तक बहुत ही उपादेय है। इसमें श्रीकृष्ण द्वारा आत्मा की नित्यता, कर्मों से लिप्त न होने का निरूपण, साकार-निराकार वर्णन कर्म और ज्ञान के तत्व का रहस्य, जीवात्मा के संसार भ्रमण में कारण-रूप वासना के नाश से मुक्ति का प्रतिपादन, तत्वज्ञान के उपदेश से अर्जुन की अविद्या सहित वासना तथा मोह का नाश, आदि का सुविस्तृत वर्णन हुआ है।

गीता के उपदेष्टा जगन्नियन्ता जगदीश्वर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं और उपदेश्य हैं समस्त जीवों का प्रतिनिधि भूत अर्जुन। अर्जुन को लक्ष्य बनाकर सम्पूर्ण जीवों को भगवान् ने उपदेश दिया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्व उद्धृत वचनों से यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्ण और अर्जुन नारायण और नर के अवतार हैं। अर्जुन का इस विचार से भी सब जीवों का प्रतिनिधि होना सिद्ध है।

अस्तु! जीव ईश्वर में यही भेद है कि जीव सदा अनेक क्लेशों से आक्रान्त रहता है और ईश्वर सदा आनन्दमय है।[1]

यही श्रीगीताजी के आरम्भ में अभिव्यञ्जित किया गया है। अर्जुन को क्लेशमय रूप में चित्रित किया गया है (जैसा गीता में सर्वत्र देखते हैं) वह एक प्रकार से जीव की अवस्था का चित्रण है। जीव प्रायः सदा ही शोक, भय, मोह से आक्रान्त होकर ऐसी ही दशा में रहा करता है।

आर्यसंस्कृति में ईश्वर द्वारा ब्रह्मा और महर्षियों के हृदय में प्रेरित वेदों को ही धर्माधर्मनिर्णय का मुख्य आधार माना गया है। उसी के अनुसार गीता में भी उपदेष्टा भगवान् और उपदेश्य जीव प्रतिनिधिरूप अर्जुन को रखा है।

मनुष्य के कल्याण के लिये शास्त्रों में तीन उपाय वताए हैं—कर्म. उपासना या भक्ति और ज्ञान। ये ही गीता के भी प्रतिपाद्य हैं। चतुर्थाध्याय में ईश्वरावतार का निरूपण प्रासङ्गिक है।[2]

---

१. तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः (२—१०)

२. अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामाधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया। (गी० ४—४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ईश्वर भक्ति भी ईश्वर से सम्बन्ध रखती है, इसलिये इसका निरूपण इसी अध्याय में किया जाता है।

श्रीरामानुजाचार्य के परमगुरु श्रीयामुनाचार्य जी का एक 'गीतार्थ संग्रह' है। उसमें गीता का मुख्य प्रतिपाद्य भगवद् भक्ति और तत्रापि 'शरणागति' ही माना है। भगवद्गीता प्रधान रूप से भक्ति वा शरणागति की प्रतिपादक है, यही मत श्रीरामानुजाचार्य का भी है।

श्रीवल्लभाचार्य जी ने भी विस्तृत वर्णन करते हुए भगवान् की परा भक्ति प्राप्त करना ही भगवद्गीता के उपदेश का उद्देश्य कहा है।

श्रीनिम्बार्काचार्य के अनुयायी श्री पं० केशव काश्मीरी भट्टाचार्य ने 'तत्वप्रकाशिका' टीका में भी प्रधानता भक्ति को ही दी है।

नवम अध्याय से लेकर इस अध्याय तक चार अध्यायों में ऐश्वर्य योग है। इसका नाम श्रीभगवान् ने अपने मुखारविन्द से ही 'राजविद्या' नाम दिया है। समस्त विद्याओं की राजा होने के कारण ही यह 'राजविद्या' है[1]। इसको ही 'भक्तिमार्ग' कहते हैं। भक्ति का सम्बन्ध ऐश्वर्य या ईश्वर भाव से होने से ही यह ऐश्वर्य योग है।

इस भक्तिमार्ग को 'भागवत धर्म' भी कहते हैं। क्योंकि श्रीमद्-भागवत के एकादश स्कन्ध के कुछ अध्याय श्री उद्धवजी के उपदेश निमित्त श्रीगीता जीके भाष्यरूपमें ही हैं। इसलिये सनातन धर्म के प्रति-पादक मुख्य प्राचीन ग्रन्थ श्रीगीताजी के अतिरिक्त पद्मपुराण, वाराह-पुराण, श्रीमद्भागवत, नारदपञ्चरात्र, महाभारत शान्तिपर्व नाराय-णीय प्रकरण, शाण्डिल्य और नारद के भक्ति सूत्र माने जाते हैं।

---

१. राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्। (गी० ९—२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन ग्रन्थों में भगवद्गीता का माहात्म्य, अर्जुन का उपाख्यान आदि विस्तृत वर्णित हैं। नारायणीय में तो भगवद्गीता नाम आया है। शाण्डिल्य सूत्र में तो भक्ति की मीमांसा श्रीमद्भगवद्गीता के वचनों के आधार पर ही है। यह कहना अतियोग नहीं होगा, यथा पूर्व मीमांसा ब्राह्मण बचनों की मीमांसा है, उसी तरह शाण्डिल्य सूत्र भी भगवद्गीता के वचनों की मीमांसा हो सकती है।

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः। १।

इस श्लोक में एकादश अध्याय के अन्तिम सारभूत 'मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः। निर्वैरः सर्वभूतेषु य स मामेति पाण्डव' इस उपदेश पर अर्जुन का प्रश्न है। इस प्रकार सदा निष्ठापूवक जो भक्त तेरी पूजा करते हैं और दूसरी तरफ जो लोग अनश्वर और अव्यक्त की उपासना करते हैं, इन दोनों में से योग का ज्ञान किसको अधिक है।

वक्तव्य—श्रीमद्भगवद्गीता प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सभी अध्यायों में कर्म, ज्ञान, उपासना वा भक्ति का प्रतिपादन करती है, अतः सभी अध्याय परम आदरणीय हैं, किन्तु यह द्वादश अध्याय छोटा सा बीस श्लोकों का ही है। परन्तु अमृतमय है। अमृत की तरह मधुर एवं संजीवन दाता है। स्वयं श्री भगवान् ने इस अध्याय में श्रीमुख से भक्ति-रस की महिमा का वर्णन 'ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते' इस वाक्य द्वारा अत्यन्त स्पष्ट किया है।' इदं धर्म्यामृतं मुमुक्षुणा यत्नतः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुष्ठेयम्, विष्णोः प्रियं परं धाम जिगमिषुणा' (शङ्कराचार्य) 'धर्म्यं मृत्वादिसंसार नाशकं चेति धर्म्यामृतम्' (आनन्दतीर्थ)।

भागवत प्रधान शास्त्रों में ईश्वर की उपासना के तीन भेद मिलते हैं। १ विश्वरूप से २ विश्वचर रूप से ३ विश्वातीत रूप से। दशमाध्याय में विश्वचर रूप से अर्थात् विशेष प्रभावशाली व्यक्तियों में भगवद् भाव की प्रवृत्ति का वर्णन है—

आदित्यानामहं विष्णुः—ज्ञानं ज्ञानवतामहम्, इत्यादि से विभिन्न विभूतियों द्वारा व्यक्तरूप में एक देशस्थित चराचर में अपने चिन्तन का उपदेश हुआ है।

एकादश अध्याय में विश्वरूप से ही उपासना की गई है—'पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः। इत्यादि। इनके द्वारा विश्वरूप का प्रदर्शन करके अन्त में 'मत्कर्मकृत्' इस श्लोक से अपने पूर्व प्रदर्शित विश्वरूप की ही उपासना कही है।

इनसे पूर्व के सप्तमाध्याय में—नत्वहं तेषु ते मयि, त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। मोहितं नाभि जानाति मामेभ्यः परमतंव्ययम्।

इत्यादि वाक्यों से विश्वातीत रूप की उपासना का वर्णन हुआ है। एवं विश्व अथवा विश्वचर में मन लगाकर निरन्तर एकाग्रचित्त से जो आपकी उपासना करते हैं, और जो अक्षर रूप से व्यापक तथा इन्द्रियातीत (विश्वातीत) रूप में उपासना करते हैं, उनमें योगवित्तम कौन है। यह स्मरणीय है कि विश्व, विश्वचर की उपासना ही व्यक्त उपासना है।

यथा—परमेश्वर के इस विश्वरूप में सगुण साकार व्यक्त रूप सम्पूर्ण मानवजाति, सम्पूर्ण पशुपक्षियों की जाति, सम्पूर्ण वृक्ष वनस्पतियों की जातियाँ और जो कुछ अवशिष्ट जो इस विश्व में सम्मिलित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है, वह सब अखण्ड रूप से सम्मिलित है। परमेश्वर का यह स्वरूप ज्ञात होने पर उसकी सेवा किस प्रकार करनी चाहिए इसका विचार करना आवश्यक है, इस अध्याय में यही विचार किया गया है।

व्यक्त रूप की उपासना करने वाले श्रेष्ठ ! अथवा अव्यक्त की उपासना करने वाले श्रेष्ठ ! यह प्रश्न अर्जुन का है। क्योंकि व्यक्तरूप क्षर-नाशवान् है और अव्यक्त रूप अक्षर अविनाशी है, नाशवान् के उपासकों से अविनाशी के उपासककी श्रेष्ठ होने की सम्भावना है, इसलिए अर्जुन को शङ्का हुई।

विश्वातीत की उपासना अव्यक्त उपासना मानी जाती है, क्योंकि विश्वातीत रूप प्रकट नहीं होता, वह अव्यक्त ही रहता है।

श्रीमधुसूदन सरस्वती तथा श्रीनीलकण्ठजी गौड़ व्यक्त से साकार तथा अव्यक्त से निराकार का अर्थ करते हैं—इसी को सगुण-निर्गुण नाम भी दिये हैं।

'तत्र मच्छब्दार्थः किं सगुणमुत निर्गुणं ब्रह्म उभयत्राप्यस्मच्छब्दस्य पूर्वं प्रयोगदर्शनाद् इति सन्दिहानः पृच्छति—एवमिति नीलकण्ठः।

यथा—सगुण भक्तियोग में प्रत्यक्ष इन्द्रियों से काम लिया जाता है। सगुण उपासक के लिए इन्द्रियाँ साधन हैं। इन्द्रियां पुष्परूप हैं। इन्हीं को भगवान् को अर्पण करते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नेत्रों से प्रभु का स्वरूप दर्शन, कर्णों से हरिकथा श्रवण, जिह्वा से प्रभु नामोच्चारण, पादों से तीर्थाटन, हाथों से पूजादि कार्य इस तरह समस्त इन्द्रियों की प्रभु सेवा में समर्पणता हो जाती है। यह साकार उपासना है।

सगुण उपासना ही मूर्ति पूजा है। यह अपनी शक्ति के अनुसार अनेक तरह से अनेक देवताओं की की जाती है। माता-पिता, पूज्यजन, साधु, महात्मा, ब्राह्मण, अन्य रोगी वृद्ध आदि मूर्तिमान प्राणियों की पूजा या सेवा करना साकार एवं सगुण पूजा है।

निराकार ही निर्गुण उपासना है—निर्गुण उपासक सर्वभूतरत होता है। यह साधारण कार्य नहीं है। इस तरह भगवान् के दो तरह के भक्त होते हैं। १-सगुण भक्त, २-निर्गुण भक्त। अब अर्जुन प्रश्न करता है कि भगवन् ! कुछ सज्जन सगुण (मूर्ति पूजा) की उपासना करते हैं, तथा कुछ निर्गुण (निराकार) की उपासना करते हैं, इन दोनों में कौन योगवित्तम है।

विभिन्न टीकाकारों के विचार—

१. तथैवं सति मया मुमुक्षुणा किं निराकारमेव वस्तु चिन्तनीयं किं वा साकारमिति (मधुसूदनी)

२. किं सगुणमुत निर्गुणम् (नीलकण्ठी)

३. शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते॥
(श्रीमद्भागवत १०।२-३७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वेदान्त दर्शन के अनुसार मायाशबलित या प्रकृति विशिष्ट परब्रह्म ही ईश्वर होता है,[1] अतः व्यक्तोपासना को ईश्वरोपासना भी कह सकते हैं।

श्रीधरस्वामी तथा श्री शङ्करानन्दजी ने—

अर्जुन के इस प्रश्न का अर्थ करते हुए कहा है कि—ज्ञान और भक्ति में कौन मार्ग श्रेष्ठ है, अर्थात् भक्ति और ज्ञान इन दोनों मार्गों में शीघ्र एवं निश्चित फ़ल देने वाला कौन है।[2]

इनके मत में श्लोक का अर्थ यह है कि–जिस तरह विश्वरूप आपने मुझे दिखाया, उस साकार रूप में जो आपकी उपासना करते हैं, अथवा जो ज्ञान प्राप्त कर उसको स्थिरता के लिये इन्द्रियों से न जानने योग्य एवं निश्चित फल देने वाले कौन हैं—[3]

१. श्रीरामानुजाचार्य भी यहाँ सगुण—निर्गुण की उपासना का वर्णन करते हैं कि छठे अध्याय में योग के वर्णन में निर्गुण ब्रह्म की उपासना कही है, तथा यहाँ सर्वगुण विशिष्ट अपना रूप दिखा कर भगवान् ने उनकी उपासना का उपदेश दिया है। इस व्याख्यानुसार अर्जुन का

---

१ शाङ्करनये निर्विशेषं ब्रह्म मायोपाध्यवच्छिन्नं सद् यदा सविशेष—ब्रह्मत्वमुपैति तदा स ईश्वर उच्यते। अविद्योपाध्यवच्छिन्नं हि ब्रह्मैव ईश्वरपदभाग्भवतीत्यर्थः

२ 'मत्कर्मकृन्मत्परमः' इत्यादिना ज्ञाननिष्ठस्य वैशिष्ट्यमुक्तम्। 'तेषां ज्ञानी नित्य-युक्त एक भक्तिर्विशिष्यते' इत्यादिना ज्ञाननिष्ठस्य श्रेष्ठत्वमुक्तम् (श्रीधरी)

३ मुमुक्षूणां सगुणोपासनं निर्गुणोपासनं चोभयमपि मोक्षसाधनं त्वयोपदिष्टम्, तत्र सुकरं किं साक्षान्मोक्षहेतुः किं तद् वक्तव्यम्। (शङ्करानन्दी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रश्न है कि सगुण और निर्गुण की उपासनाओं में श्रेष्ठ मार्ग कौन सा है तथा किस मार्ग से शीघ्रता से सिद्धि मिलती है।[1]

मध्वाचार्य श्री आनन्दतीर्थ की व्याख्या में—उक्त प्रश्न का यह अर्थ है कि जो भक्त आप की अर्थात् परब्रह्म की उपासना करते हैं, और जो अव्यक्त की अर्थात् लक्ष्मी देवी की उपासना करते हैं, उनमें कौन श्रेष्ठ है।[1] इनके मत में अव्यक्त शब्द से प्रकृति लिया है, तथा प्रकृति की अधिष्ठात्री श्री लक्ष्मी है।[2]

सामवेद आदि में भी कई स्थानों पर लक्ष्मी माता का वर्णन हुआ है,[3] इससे इस प्रश्न की संगति हो जाती है।

सततयुक्ताः—सदायोग युक्त होकर निरन्तर अतिशय प्रेम से भगवत् कर्मादि में सावधान पूर्वक प्रवृत्त, साकारवस्त्वेक शरण।

अथवा—निरन्तर जाति, देश, आत्मा आदि की उन्नति के साधनों में कर्तव्य बुद्धि से युक्त।

१—सकलविभूतियुक्तमनवाधिकातिशयसौन्दर्यसौशील्यसार्वज्ञसत्यसंकल्पत्वाद्यनन्तगुणसागरं परिपूर्णमुपासते, ये चाप्यक्षरं प्रत्यगात्मस्वरूपं तदेव चाव्यक्तं चक्षुरादिकरणैनाभिव्यक्तस्वरूपमुपासते, तेषाम् उभयेषां के योगवित्तमाः।

(रामानुजभाष्यम्)

२—अव्यक्तं प्रकृतिः, यत्तत् त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्। प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत्। (भागवते) आनन्द तीर्थः।

३—उपास्य तां श्रियमव्यक्तसंज्ञां भक्त्या मर्त्यो मुच्यते सर्वबन्धैः, इति सामवेदे आग्निवेश्यशाखायाम् महच्च माहात्म्यं तस्या वेदेषूच्यते (अ० भा०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ये भक्ता:—अनन्यशरण श्रीमद्भागवत ११-२-४५—

सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः। ४५।
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः। ४६।
अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः। ४७।
गृहीत्वापीन्द्रियैरर्थान् यो न द्वेष्टि न हृष्यति।
विष्णोर्मायामिदं पश्यन् स वै भागवतोत्तमः। ४८।
देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः।
संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः। ४९।
न कामकर्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः। ५०।
न यस्य जन्मकर्मभ्यां न वर्णाश्रमजातिभिः।
सज्जतेऽस्मिन्नहंभावो देहे वै स हरेः प्रियः। ५१।
न यस्य स्वः पर इति वित्तेष्वात्मनि वा भिदा।
सर्वभूतसमः शान्तः स वै भागवतोत्तमः। ५२।
त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्म-
सुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्धमपि यः
स वैष्णवाग्र्यः। ५३।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे ।
हृदि कथमुपसीदतांपुनः स प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः।५४।

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्
धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः ।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः
स भवति भागवतप्रधान उक्तः । ५५ । इति ।

ये भगवद् भक्तों के लक्षण कहे हैं :—

हरि बोले—जो मनुष्य अपने को सब भूतों में ब्रह्मरूप से अनुस्यूत देखता है और अपने में सब भूतों को ब्रह्मरूप देखता है, वह भगवद्-भक्तों में श्रेष्ठ है। अथवा जो मनुष्य सब भूतों में नियन्तारूप से वर्तमान भगवान् का परम ऐश्वर्य देखता है न कि उनका तारतम्य और ऐश्वर्यादिगुणों से पूर्ण भगवान् में ही सम्पूर्ण भूतों को देखता है, वह भगवद्-भक्तों में श्रेष्ठ है। (४५)

जो ईश्वर में प्रेम, भगवद्भक्तों के साथ मित्रता, अज्ञानियों पर कृपा, दोषारोपण करने वालों की उपेक्षा करता है, वह भगवद्भक्तों में मध्यम है। (क्योंकि वह भेद-दृष्टि रखता है।) (४६)

भगवत् प्राप्ति के लिये जो श्रद्धा से प्रतिमा में ही भगवान् की पूजा करता है और भगवद्भक्त तथा गौ, ब्राह्मण आदि में उनकी पूजा नहीं करता, वह पुरुष प्राकृत भक्त है अर्थात् उसने अभी भक्ति प्रारम्भ की है (समय पाकर वह भी क्रमशः मध्यम और उत्तम भक्त होगा) (४७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आठ श्लोकों से पुनः उत्तम भक्त के लक्षण कहते हैं—जो पुरुष यह देखकर कि यह जगत् भगवान् की माया मात्र है, इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण करके भी उनसे न द्वेष करता है और न प्रसन्न होता है, वह भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ है। (४८)

जो मनुष्य निरन्तर श्रीहरि का स्मरण करने से देह आदि के जन्म, नाश आदि संसार धर्मों से मोहित नहीं होता है, अर्थात् यह जानता है कि जन्म-मरण देह के धर्म हैं, क्षुधा—पिपासा प्राण के धर्म हैं, काम-क्रोध-भय आदि मन के धर्म हैं, तृष्णा बुद्धि का धर्म है तथा श्रम इन्द्रियों का धर्म है; इनसे आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है—वह भगवद् भक्तों में श्रेष्ठ है। (४९)

जिसके चित्त में काम, कर्म और उनकी वासनाओं को उत्पत्ति ही नहीं होती है और जिसके आश्रय केवल वासुदेव ही हैं, वह श्रेष्ठ भगवद् भक्त है। (५०)

जिसको सत् कुल में जन्म, दाय आदि कर्म, ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व आदि वर्ण एवं ब्रह्मचर्य आदि आश्रम से अपने वर्तमान देह में अहङ्कार नहीं होता है, वह श्रेष्ठ भगवद्भक्त है। (५१)

जिसकी धन और शरीर में अपनी परायी बुद्धि नहीं है और जो सब प्राणियों को समानभाव से देखता है, वह श्रेष्ठ भगवद्भक्त है।(५२)

जिनकी चित्तवृत्ति भगवान् के चरणों में सदा लीन रहती है ऐसे देवता भी जिनको नहीं पा सकते, ऐसे अति दुर्लभ भगवान् के चरणारविन्द से, आधे क्षण मात्र त्रिलोकी के राज्य के लिए भी जो विचलित नहीं होता वह पुरुष श्रेष्ठ भगवद्भक्त है, क्योंकि उसको सदा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह ध्यान रहता है कि भगवत् चरणारविन्द से बढ़ कर दूसरी कोई सारवान् वस्तु है ही नहीं। (५३)

महापराक्रमी भगवान् के चरणों की अँगुलियों के नख स्वरूप मणियों की चाँदनी से (चन्द्रमा की कान्ति के समान शीतल कान्ति से) जिसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये हैं, ऐसे भजन करने वाले के हृदय में फिर ताप कैसे उत्पन्न होगें। (इसमें उदाहरण देते हैं) जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर रात्रि में सूर्य का ताप नहीं होता है वैसे ही भक्त के हृदय में विषय वासना उत्पन्न नहीं होती है। (५४)

कथित सम्पूर्ण लक्षणों का सार कहते हैं—ज्वरादि रोगों से पीड़ित अवस्था में भगवान् का नाम मात्र लेने से ही उसके सम्पूर्ण पाप समूहों का नाश कर देते हैं, तो जिस भक्त ने प्रेमरूपी रज्जु से भगवान् के चरण कमलों को अपने हृदय में बाँध लिया है, उसको श्रीहरि स्वयं कभी नहीं छोड़ते हैं। ऐसे पुरुष को भगवद्भक्तों में मुख्य कहा है।

त्वाम्—पूर्वदर्शित विश्वरूपधारी आपको। यथादर्शितं विश्वरूपम् (शंकरा०) त्वां तत्र तत्र प्रदर्शितं सर्वयोगैश्वर्यसर्वज्ञानशक्तिमत्त्वोपाधिमीश्वरं विश्वरूपम्। (भा० टी०)

पर्युपासते—नैरन्तर्येण साकारं चिन्तयन्ति विचक्षणाः (स० टी०)। परितः सर्वतोऽन्तः करणेनोपतिष्ठन्ते, प्राप्तिरूपस्थितिः, त्वत्समीपे चेतसोपविश्यन्ते विना त्वां नान्यद् वीक्षन्ते—इति तात्पर्यम्।

पर्युपासते—इस पद से यह जानना चाहिये कि ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर भी ज्ञान की स्थिरता के लिये उपासना की जाती है। पञ्चदशी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आदि ग्रन्थों में यह कहा गया है[1] कि चित्त को चारों ओर से रोक कर निरन्तर निर्गुण परब्रह्म का ध्यान ही उस समम की उपासना मानी जाती है। इसलिये श्रीधरादि के मत में ज्ञान, भक्ति अर्थ के लिये शङ्का नहीं हो सकती।

'मद्भक्ता यान्ति मा मपि' 'सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि' 'मत्कर्मकृन्मत्परमः' इत्यादि वाक्यों से भक्ति का उपदेश देकर तथा भक्ति से ही मेरा सामान्य तथा विशेष ज्ञान हो सकता है। इससे स्पष्ट होता है कि भक्ति करने पर ज्ञान प्राप्त होता है तथा ज्ञान के अनन्तर भगवत्प्राप्ति होकर अन्त में ज्ञान की श्रेष्ठता सिद्ध हो जाती है।

अक्षर—जो अस्थूल अनणु—उपनिषदों में प्रतिपादित 'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चित्' इत्यादि उपदेशों के द्वारा पूर्व कथित इन्द्रियों से अग्राह्य—निराकार।

निर्गुण, निर्विशेष, सर्वोपाधिरहित निर्गुण ब्रह्म (शंकराचार्य) अविनाशी 'न क्षरत्यश्नुते वेत्यक्षरम्' एतद् वै तदक्षरं गार्गि, ब्राह्मणा-अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वमदीर्घम्' इत्यादि श्रुतिप्रतिषिद्धसर्वोपाधि रहितं निर्गुणं ब्रह्म। (म० सू०) परं ब्रह्माक्षरं शुद्धं निर्गुणं निष्फलं शिवम्। सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं निराकारं निरामयम्। (स० टी०) अव्यक्तम्—निरस्त सर्वोपाधित्वादव्यक्तम् अकरणगोचरम्। यद् हि लोके

---

१. उपासवस्य सामर्थ्याद् विद्योत्पत्तिर्भवेत्ततः।
नान्यः पन्था इति ह्येतच्छास्त्रं नैव विरुध्यते।
इत्यादि ध्यानदीपप्रकरणम्। (श्लो० १४२, पञ्चदशी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करण गोचरं तद् व्यक्तम् उच्यते, अञ्जेः धातोः सत्कर्मकत्वाद् इदं तु अक्षरं तद् विपरीतम् (श्री शंक.) शब्दादिविशेषाभावान्न व्यज्यत इत्यव्यक्तम् (म० सू०) विध्वस्तसर्वविशेषमव्यक्तम्। इन्द्रियैर्न व्यज्यते-इति-अव्यक्तमकरणगोचरम् (अ० टी०) चित्प्रकृतिम् (रा० टी०). तदेव चाव्यक्तं चक्षुरादिकरणेनाभिव्यक्तस्वरूपम् (रा० नु०) बुद्ध्या-दिगोचरम् (श्रीधरी)

तत्र किं चिन्तनीयं स्मान्मया वस्तु मुमुक्षुणा।

साकारं वा निराकारमिति सन्देह शान्तये (स० टी०)

किं निराकारमेव सर्वस्वरूपं वस्तु चिन्तनीयं किं वा साकार मिति निश्चयाय सगुण निर्गुणयोर्विधयोर्विशेषबुभुत्सयाऽऽह अर्जुनः (भाष्यो-त्कर्षदीपिका)।

इत्यादि सभी टीकाकारों ने साकार एवं निराकार के लिए प्रश्न किये हैं।

आयुर्वेद की सुश्रुत संहिताशारीरस्थान के प्रथमाध्याय में अव्यक्त का वर्णन इस प्रकार है—

'सर्वभूतानां कारणमकारणं सत्वरजस्तमो लक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवहेतुरव्यक्तं नाम। तदेकं बहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं समुद्र इवौदकानां भावानाम्' इति।

सांख्यशास्त्र के सांख्यकारिका ग्रन्थ में व्यक्त और अव्यक्त के भेदों का इस तरह वर्णन किया है—

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिंगम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्। (सां. १०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् अव्यक्त, अहेतुमत्, नित्य, व्यापी, निष्क्रिय, एक, अनाश्रित, अलिङ्ग, अनवयव, और स्वतन्त्र होता है।

सांख्यशास्त्र में, अव्यक्त एवं व्यक्त भेद से चौवीस तत्वों में केवल एक प्रकृतितत्व एवं गुणविशिष्ट होने के कारण वह उसको अव्यक्त कहते हैं। अव्यक्त को छोड़कर शेष चौवीस तत्वों को व्यक्त कहते हैं।

अव्यक्त—किसी इन्द्रिय से नहीं जाना जा सकता। केवल अपने आप ही उसकी सत्ता समझी जा सकती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निर्गुणात्मोपासनापेक्षया सगुणेश्वरोपासनायाः श्रेष्ठत्वे भगवत्सम्मतिः

श्रीभगवानुवाच

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य इन छः का नाम भग है। ये जिसमें रहें उसी को भगवान् कहते हैं।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।

सांख्यशास्त्र में बुद्धि[1] के चार सात्विक रूप और चार तामस रूप कहे हैं। इनमें धर्म,[2] ज्ञान,[3] वैराग्य,[4] ऐश्वर्य[5] इन चार बुद्धि के सात्विक

---

१. अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मोज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद् विपर्यस्तम्। (सां० का० २३)

२. धर्म—यो धृतः सन्धारयते स धर्म इति कथ्यते।
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

३. ज्ञान—परोक्ष-अतीन्द्रियार्थदृष्टत्वलक्षण—
आविर्भूतप्रकाशानामनभिप्लुतचेतसाम्।
अतीतानागतज्ञानं प्रत्यक्षान्न विशिष्यते।१।
अतीन्द्रियानसंवेद्यान् पश्यन्त्यार्षेण चक्षुषा।
ये भावान् वचनं तेषां नानुमानेन बाध्यते।२।

४. वैराग्य—राज्यविभूति, वस्त्र, अलङ्कारादि लौकिक उन्नति सामग्रियों में तुच्छत्व बुद्धि।

५. ऐश्वर्य—अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व ये आठ योगसिद्धियाँ ही ऐश्वर्य होती हैं। इन विद्या विशेषों में ही भग शब्द निगूढ़ है। (भाग० ११।१६।२७।) ऐश्वर्य गुण भी होता है। (भाग० १।१६।२८)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूपों के साथ यश और लक्ष्मी को मिलाया गया है, ये दोनों धर्म और ऐश्वर्य के फलभूत हैं। अलग नहीं। इन चार सात्विक रूपों के द्वारा ही अव्यय पुरुष भगवान् की प्राप्ति होती है।[६]

गीता में प्रारम्भ से लेकर भगवान् शब्द से श्रीकृष्ण ही लिया गया है। 'भगवान्' शब्द के श्लोकोक्त लक्षण का समन्वय केवल श्रीकृष्णचन्द्र में सम्पूर्णतया मिलता है। इसी आधार पर 'कृष्णस्तु-भगवान् स्वयम्' यह अक्षरशः सत्य है। इस श्लोक पर थोड़ा दिग्दर्शन करना उचित होगा। यथा—

अवतार—शब्द 'अव' उपसर्ग पूर्वक 'तृ' धातु से घञ् प्रत्यय से सिद्ध होता है। इस विषय में पाणिनि का विशिष्ट सूत्र है 'अवेतिस्रोर्घञ्' (३।३।१२०) इसका अर्थ होता है—किसी ऊँचे स्थान से नीचे उतरने की क्रिया अथवा उतरने का स्थान। इस सामान्य अर्थ के साथ इसका यह विशिष्ट अर्थ भी है, किसी महनीय शक्ति सम्पन्न भगवान् या देवता का नीचे के लोक में उतरना तथा मानव या अमानव रूप को धारण करना। इसी को पुराणों में 'आविर्भाव' शब्द से कहा है।—

अवतार का प्रयोजन—

जब-जब धर्म की ग्लानि होती है तथा अधर्म का उदय होता है तब-तब भगवान् अपने को इस संसार में उत्पन्न करते हैं। अतः ऊर्ध्व लोक से इस अधोलोक में भगवान् का उतर आना ही 'अवतार'

६. षण्णां भगानामाधानाद् भगवानीश्वरो भवेत्। (म० सू०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शब्द का अर्थ होता है। भगवान् श्रीकृष्ण के ये श्लोक अवतारवाद का वास्तविक तथ्य स्पष्ट करते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।१।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

(श्री० गी० ४-३-८)

मत्स्यपुराण (४३-३४ तथा ब्रह्मपुराण ७२।२। ३ तथा ६) हरिवंश प्रथमखण्ड (४१-१८-२०) पुनः ब्रह्म (७१।१६) आदि में भगवान् के अवतार धारण करने के विषय में चार मत बतलाये गये हैं। इनमें बहुत विस्तार से वर्णन हुआ है— संक्षेप में १—भगवान् अपनी दिव्य-मूर्ति का सर्वथा परित्याग कर ही भूतल पर अवतीर्ण होते हैं।

द्वितीय मत यह है—भगवान् का केवल एक अंश ही चाहे—वह आधा हो, चतुर्थांश हो या एक बहुत ही छोटा भाग हो इस धरातल पर अवतीर्ण होता है।

तृतीय मत यह है—विष्णु ने अपनी मूर्ति के दो भाग कर दिये। प्रथम मूर्ति स्वर्ग में स्थित होकर दुश्चर तप करती है। तथा दूसरी मूर्ति योगनिद्राका आश्रयण कर संसार के सृष्टि एवं संहार के लिये विचार करती है।

चतुर्थ मत—यह ब्रह्म पुराण (७१।१६— आदि) में इस तरह स्पष्ट किया है कि—समस्त जगत् को व्याप्त करने वाले परमात्मा ने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अपनी मूर्तिको चार विभागों में विभाजित किया। जिसमें एक मूर्ति 'निर्गुण' तथा अन्य तीन 'सगुण' रूप हैं। इस कल्पना को महाभारत शान्तिपर्व (अ० ३४२—३४७—३५६) से मिलाना चाहिए।

कृष्णावतार का वर्णन ऋग्वेद में इस प्रकार है—

यद प्रवीता दधतेह गर्भं सदा चिज्जगतो भवति दुहूतः।

(४।७।७८)

तैत्तिरीयारण्यक में—

नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।

कठोपनिषद् में भी—

"कृष्णाय देवकीपुत्राय" (३।१८।६) इत्यादि।

अन्य समस्त अवतार भगवान् के अवतार हैं[1], परन्तु श्रीकृष्ण

---

१. ये अवतार अनेक प्रकार के होते हैं। लीलावतार, पुरुषावतार, अंशावतार, कलावतार आदि। इन सभी अवतारों में लीला के लिए अवतरण होता है, इनमें कोई छोटा बड़ा नहीं, इन सभी का भगवान् से प्रादुर्भाव है तथा सभी पूर्ण हैं—

सर्वे नित्याःशाश्वताश्च देहास्तस्य परमात्मनः।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित्।
परमानन्दसंदोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वतः।
सर्वे सर्वैर्गुणैः पूर्णाः सर्वदोषविवर्जिताः।

अर्थात्—ये सभी अवतार नित्य हैं, शाश्वत हैं, हानोपादान रहित अप्राकृत देह हैं, प्रकृति से उत्पन्न नहीं हैं, ये जन्म-मृत्यु आदि सर्वदोषों से रहित, सर्वगुण सम्पन्न, पूर्ण और ज्ञानस्वरूप, परमानन्द संदोह हैं। इन सभी में शक्ति पूर्ण हैं। पूर्ण शक्तिमान् भगवान् के अवतारों में प्रयोजनानुसार किसी में कम किसी में अधिक शक्ति का प्रदर्शन हुआ है। इस शक्ति के प्राकटय और अप्राकटय के तारतम्य के आधार पर ही पूर्णत्व तथा अंशत्व की कल्पना की गई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् के अवतार नहीं, वे स्वयं भगवान् ही हैं। क्योंकि अन्य अवतारों में जो भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य हुए, वेदों की रक्षा, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावणादि विशिष्ट व्यक्तियों का संहार, भूमि का उत्थान, बलि राजा का दमन, क्षत्रियों का क्षय, तत्वोपदेश, म्लेच्छों का नाश आदि समस्त कार्यों के साथ इस श्लोक के प्रत्येक लक्षण उनमें विद्यमान् हैं—

वेदानुद्धरते जगन्निवहते भूगोलमुद्बिभ्रते।
दैत्यान् दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते॥
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते।
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः।१।

इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण को पूर्णावतार तथा निर्गुण परमेश्वर का सगुण प्रतिरूप माना गया है। इसके लिए प्रमाणभूत वचन श्रीमद्भागवतादि पुराणों, श्रीमद्भगवद्गीता तथा नारायणोपनिषद, वासुदेवोपनिषद्, कृष्णोपनिषद् आदि में पर्याप्त मिलते हैं।

प्रकाशिताखिलगुणः स्मृतः पूर्णतमो बुधैः।
असर्वव्यञ्जकः पूर्णतरः पूर्णोऽल्पदर्शकः।

अर्थात्—भगवान जब अपने अशेष गुणों को प्रकट करते हैं, तब वे 'पूर्णतम' हैं ऐसा पण्डित कहते हैं। जब समस्त गुणों को प्रकट नहीं करके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बहुत से गुणों को प्रकट करते हैं, तब उनको 'पूर्णतर' तथा उनसे भी अल्पगुणों को प्रकट करते हैं तब उनको 'पूर्ण' कहते हैं।

श्रीलघुभागवतामृत में अंश और पूर्ण का इस प्रकार विवेचन हुआ है—

अंशत्वं नाम शक्तीनां सदाल्पांशप्रकाशिता।
पूर्णत्वं च स्वेच्छयैव नानाशक्ति प्रकाशिता।

अनन्तशक्तिशाली भगवान् जब अल्पशक्तियों को प्रकट करते हैं, तब उस अवतारको 'अंश' कहते हैं और जिसमें अपनी इच्छा से बहुत सी शक्तियों को प्रकट करते हैं, तब उसको 'पूर्ण' कहते हैं।

शक्ति के विषय में विचार करते हैं —

शक्तिरैश्वर्यमाधुर्यकृपा तेजो मुखा गुणाः।
शक्तेर्व्यक्तिस्तथाऽव्यक्तिस्तारतम्यस्य कारणम्।

अर्थात्—ऐश्वर्य—माधुर्य—कृपा—और तेज आदि गुणों को ही शक्ति कहते हैं। इन शक्तियों की व्यक्ति (प्रकट) तथा अव्यक्ति (अप्रकट) ही तारतम्य का कारण है। अन्यथा भगवान् के तो सभी अवतार हैं।

इसी को अधिक स्पष्ट करते हैं—

शक्तिः समापि पुर्यादिदाहे दीपाग्निपुञ्जयोः।
शीताद्यार्तिच्छं येनाग्निपुञ्जादेव सुखं भवेत्।

अर्थात्—ग्रामको जलाने के लिये एक दीपक में जो शक्ति है, अग्निपुञ्ज में भी वही शक्ति है, इस तरह दोनों के समान होने पर भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शीतादि पीड़ाको दूर करने का कार्य अग्निपुञ्ज का है, वह दीपक की ज्योति से नहीं हो सकता। इसलिये शक्ति के शमन होने पर भी लीला क्षेत्र के अनुसार ही शक्ति का प्रकाश होता है।

ऐश्वर्य के लिये—पूतना संहार आदि बाल लीलाओं से लेकर अन्य समस्त लीलाओं से समग्र ऐश्वर्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

धर्म के लिये—"धर्मो धारयते प्रजाः" ? अर्थात् जगत् का उद्धारक धर्म है। भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् धर्ममूर्ति हैं।

यथा—माता-पिता के प्रति—ग्यारह वर्ष की अवस्था में कंस को मार कर श्री यशोदाजी एवं श्री वसुदेव जी को कारागृह से मुक्त कराना।

ज्येष्ठभ्राता के प्रति—उग्रस्वभाव वाले श्रीबलरामजी की आज्ञानुसार उचित कार्य पर विचार न करते हुए कार्य करना।

ब्राह्मणों के प्रति—श्रीनारदादि महर्षियों को लेकर साधारण सुदामा, श्रुतिदेव आदि का सन्मान।

नारदजी के स्वागत में माघ काव्य का श्लोक—

पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।
गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेनपीठादुदतिष्ठदच्युतः॥

॥१ स० १२

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्म के विषय में श्रीकृष्ण--

धर्म के प्रति श्रीकृष्ण के निम्न शब्द कितने मार्मिक हैं—

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।
विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभां यत्र प्रपद्यते
न चास्य शल्यं कृन्तति विद्धांस्तत्र सभासदः।
धर्म एतान् रुजति यथा नद्यनुकूलजान्

तत्रैव ९५।४८-४८

अभिप्राय है कि जिन सभासदों की उपस्थिति में अधर्म के द्वारा धर्म का गला घोंटा जाय वे सभासद नष्ट हुये माने जाते हैं। ये ही शब्द विदुरजी ने द्रौपदी के चीरहरण के प्रसंग पर सभा-पर्व (अ०५८) में कहे थे।

गोमाता की सेवा प्रसिद्ध ही है—

नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमोनमः।

स्त्रियों के प्रति—'बह्वयः सपत्न्य इव गेहपति लुठन्ति'।

१. 'उत्तम्भयन् रतिपति रमयाञ्चकार' २. 'पत्न्यस्तु षोडशसहस्र-मनङ्गबाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः'[२] ३. भगवतो न मनो-विजेतुं, स्वैर्विभ्रमैः समशकन् वनिता विभूम्नः' ४. 'सिषेव आत्मन्यव-रुद्धसौरतः' आदि अनेक प्रमाणों से सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण जितेन्द्रियशिरोमणि तथा परमोत्कृष्ट योगिराज थे। यह भी ध्यान में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रखने की बात है कि—स्त्री से दूर रहकर विषयवासना रहित रहने में उतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी सहस्त्र स्त्रियों के मध्य में रहते हुए भी सर्वथा विषय वासना रहित रहने में है। यह घटना श्रीकृष्ण में ही है।

सन्धिविग्रहादि—

महाभारत युद्ध के आरम्भ होने से पहले श्रीकृष्ण ने अपना उद्योग तथा समस्त प्रयत्न युद्ध रोकने के लिये किये। धृतराष्ट्र के पास प्रधान पुरुष होकर भी स्वयं संधि का सन्देश लेकर जाना और दूत कार्य करना श्रीकृष्ण के उदात्तचरित्र का पूर्णतया परिचायक है।

न जातु गमनं पार्थ भवेत् तत्र निरर्थकम्।
अर्थ प्राप्तिः कदाचित् स्यादन्ततो वाप्यवाच्यता॥

राजनीति-क्षेत्र—सन्धिविग्रहादि सर्व कार्य पारङ्गत ?

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः।२-३७।

शरणागतों के प्रति—'तेषां योगक्षेमं वहाम्यहम् 'न मे भक्तः प्रणश्यति'[1] तेषामहं समुद्धर्ता' इत्यादि प्रतिज्ञाऐं पर्याप्त हैं।

श्रीकृष्ण की राजनीति—

शांति पर्व के ८१ वें अध्याय के अनुशीलन करने पर श्रीकृष्ण के राजनैतिक जीवन का परिचय मिलता है। यह अध्याय श्रीकृष्ण के राजनैतिक वैदुष्य व्यावहारिक कौशल और अकेले ही यादवीय राजनीति के संचालन पांडित्य की तथ्यता प्रस्तुत करता है। भारत का मंगल-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिंतन एवं धर्म मार्ग पर चलने के लिये श्रीकृष्ण का योगदान अद्वितीय है। व्यासजी के निम्न कथन से इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं रहता है--

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्रश्रीर्विजयो भूतिध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।। गीता १८।७८

द्रौपदी की मान रक्षा—

पतेत् द्यौर्हिमवान् शीर्येत् पृथिवी शकली भवेत् ।

शुष्येत् तोयनिधिः कृष्णे न मे मोघं वचो भवेत् ।

(वनपर्व १२–३०–३१)

आकाश भले ही गिर जाय, हिमालय भले ही चूर्ण विचूर्ण होकर धराशायी हो जाय, पृथ्वी टुकड़े-टुकड़े हो जाय, और समुद्र भले ही सूख जाय, परन्तु हे कृष्णे द्रौपदी ? मेरा वचन व्यर्थ नहीं हो सकता। ऐसे सत्यप्रतिज्ञ की प्रतिज्ञा कभी झूठी नहीं होती।

द्रौपदी—सत्यंते प्रतिजानामि राज्ञां राज्ञी भविष्यति।

भक्तों के प्रति--अक्रूर, उद्धव, विदुर आदि भक्तजनों के साथ व्यवहार। यही नहीं अन्तिम समय में श्री भीष्म के वचन 'स्वनिगम-मपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः। (१स्क०९।३२) इत्यादि श्लोकों में स्पष्ट हैं।

मित्रों के प्रति--गोकुल, वृन्दावन में गोपवालकों के साथ—

जीर्णातरिः सरिदतीव गभीरनीरा

पक्षोऽसितोऽसिरजनी जलदैर्निरुद्धा ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बाला वयं सकलमित्थमनर्थ हेतुः

श्रेयाननं त्वमसि सम्प्रति कर्णधारः । (सुभाषितम्)

शिष्यों के प्रति--श्रीअर्जुन को उपनिषदों के सारतत्व को इस गीता द्वारा देना ।

समस्त संसार के प्रति—राजसूय यज्ञ के प्रकरण से स्पष्ट ज्ञात होता हैं कि 'कृष्णः पादावने जने' (भागवत ५।५) समागत अतिथियों का चरण प्रक्षालन करते हुए--

चरणप्रक्षालने कृष्णः ब्राह्मणानां स्वयं त्वभूत् ।

सर्वलोकसमावृत्तः पिप्रीषुः फलमुत्तमम् । (सभापर्व ३५।२०)

उत्तम फल पाने की इच्छा से कृष्ण ने ब्राह्मणों के पैर धोने का काम अपने जिम्मे लिया—यह कार्य सचमुच ही निरभिमान व्यक्तित्व का परिचायक है ।

तृणादपि सुनीचेन, तरोरिब सहिष्णुता ।
अमानिना मानदेन, कर्तव्यो मानसंग्रहः ।

यद् वा—अमानी मानदो मान्यः । चरितार्थ किया है ।

आशय स्पष्ट है कि कौरवों तथा पांडवों के कल्याणके लिये श्रीकृष्ण ने पूरा प्रयत्न किया अतः उन्हें निरर्थक निंदा का भाजन नहीं वनाया जा सकता उनके दौत्यकार्य का उद्देश्य कौरवों तथा पांडवों में सन्धि कराकर, पांडवों के साथ न्याय करवाना और कौरवों को मृत्यु से बचाना था। स्पष्टतः उक्त शब्द श्रीकृष्णकी शान्तिभावना प्रस्थापक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह कथन उद्योग पर्व ९३।१९।१९ में श्लोकों से पूर्णतया स्पष्ट होता है।

यश के विषय में—

भारत के इतिहास में जितने महात्मा साधु, सन्त, परमप्रसिद्ध हुए हैं तथा सभी प्रान्तों में आध्यात्मिक तत्व जिज्ञासु एवं तत्ववेत्ता जगत् में श्रीकृष्ण की विश्वव्यापिनी कीर्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है। संस्कृत साहित्य में–श्रीमद्भागवत् के मङ्गलाचरण श्लोकों में–

नानाविधान्यपि मतानि परः शतानि,
यत्रैकभावमुपयान्ति विहाय वादम्।
तच्चिन्मयं परतरं सकलावलम्बम्,
वन्दे महः किमपि भागवतैकवन्द्यम्। (श्रीगंगासहाय)

शिशुपालवधादि महाकाव्यों में—गीत गोविन्दादि गीतिकाव्यों में हिन्दी में सूरदास आदि की अनेक रचनाएँ श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं से ओतप्रोत हैं। यह एक आश्चर्यजनक घटना है कि विभिन्न मतवाले आचार्यगण; श्री रामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीवल्लभाचार्य आदि वैष्णव सम्प्रदाय प्रवर्तक आचार्यों के श्रीकृष्ण भक्त होने में तो कोई विशेष बात नहीं, किन्तु भगवच्छङ्करावतार जगद्गुरु प्रातराराध्य श्रीशंकराचार्य भी श्रीकृष्ण के परम भक्त थे। इससे स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्णचन्द्र की मूर्ति, मुरली-ध्वनि आदि केवल श्री राधिकाजी आदि गोपियों एवं व्रजवासियों के लिए ही मनोमोहक नहीं थी, अपितु वस्तुतः सर्व संसार के ही मन को मोहने वाली थी।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुरलीध्वनिपरि मोहित लोकः
लीलाहृत सुर मुनि जन शोकः ।
यमुनाकूल कदम्ब विलासी
हरतु हरतु दुरितं व्रजवासी । (श्री शालिग्रामः)

यही नहीं, अन्य समस्त आचार्यों से अधिक सरस्वत्यवतार आदि श्रीकृष्ण स्तोत्रों की रचना शङ्कराचार्य जी ने ही की है।

महाकवि माघ ने—

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयाऽतिदुर्गमम् ।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया ॥

(शिशुपालवध १।३२)

जिस प्रकार चोर आदि की बाधाओं से युक्त तथा लोगों के अत्यन्त कम यातायात होने से दुर्गम गहन वनमार्ग को प्राप्तपथिक किसी निरुपद्रव स्थान को पाकर पुनः नहीं लौटता और आनन्दपूर्वक उसी स्थान पर रहता है, उसी प्रकार संसारिक विषयों के प्रति बढ़े हुये अनुराग जिसमें बाधकहोते हैं और बहुत कम लोगों के जानने से जो अत्यन्त दुर्गम हैं, ऐसे मोक्ष मार्ग को पहुँचे हुये महापुरुष के लिए आप ही प्राप्तव्य स्थान हैं, जहाँ से पुनः लौटना नहीं होता। मोक्ष को पाने के अनन्तर योगी आदि आप में ही लीन हो जाते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इति श्रुतिः । अद्वैतसिद्धान्त के महाविद्वान्' अद्वैतसिद्धिः, भक्ति-रसायन आदि अनेक ग्रन्थों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रचयिता श्रीमधुसूदन्न सरस्वती के विचार में भगवान् श्रीकृष्ण निर्गुण, निराकार, अखण्ड, अपरिच्छिन्न, सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, परमेश्वर का सगुण, साकारखण्ड, परिच्छिन्न, पूर्णावतार इन शब्दों से वर्णन करते हैं—

ध्यानाभ्यासवशीकृतेन मनसा यन्निष्कलं निष्क्रियं
ज्योतिश्चेतसि योगिनो यदि परं पश्यन्ति पश्यन्तु ते।
अस्माकं तु तदेव लोचनचमत्काराय भूयाच्चिरं
कालिन्दीपुलिनोदरे किमपि यन्नीलं महो धावति।

योगी जन ध्यानाभ्यास के द्वारा वश में किये हुए मन से यदि किसी श्रेष्ठ और निष्क्रिय ज्योति का साक्षात्कार करते हैं तो वे भले ही करें। हमारे तो नेत्रों को चमत्कृत करने के लिये चिरकाल तक वही रहे जो कोई एक श्याम तेज यमुनाजी की रेती में इधर-उधर दौड़ लगा रहा है।

रासलीला के प्रारम्भ में वंशीध्वनि का लक्ष्य करके श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं—

भिन्दन्नम्बुभृतश्चमत्कृतिपदं कुर्वन्मुहुस्तुम्बुरुं
ध्यानादन्तरयन् सनन्दनमुखान् संस्तम्भयन् वेधसम्।
औत्सुक्यावलिभिर्बलिं विवलयन् भोगीन्द्रमाघूर्णयन्
भिन्दन्नण्डकटाहभित्तिमभितो बभ्राम वंशीध्वनिः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री एवं वैराग्य के लिये—

अत्यधिक साम्राज्यसम्पत्ति, धर्मसम्पत्ति, कीर्तिसम्पत्ति तथा धन-सम्पत्ति होने पर भी भगवान् श्रीकृष्ण में वैराग्य तथा अनासक्तियोग सर्वथा प्रस्फुटित होता है।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' इति।

विष्णुपुराण में—

भगवान् शब्द 'भगोऽस्यास्तीति' इस निरुक्त्यनुसार भग का अर्थ है 'ज्ञान-शक्त्यादिषाड्गुण्य' यथा—

ज्ञानशक्तिबलैश्वर्य वीर्यतेजांस्यशेषतः।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः।

इसके अनुसार ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज ये षड्गुण जिसमें पूर्णतया हों, उसको भगवान् कहते हैं।

श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं। इस अवतार में[1] षड्गुणों का पूर्ण उन्मेष है। अन्य अवतारों में यह बात नहीं है। अतएव वे अंशावतार हैं।

---

१. अवतरणमवतारः। व्यापि वैकुण्ठाद्भगवतः प्रपञ्चे समागमनम्। (भी० १-३-१) सुबोधिनी। 'लीलावतारान् पुरुषस्य भूम्नः' (श्री० भा० २ स्क०) अवतरण—वैकुण्ठादत्रागमनम्। स एव परमकाष्ठापन्नः कदाचिन्नगदुद्धारार्थ-मखण्डः पूर्णं एव प्रादुर्भूतः कृष्ण इत्युच्यते (निबन्धः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्कन्दपुराण में कहा है—

भगवान् परमात्मेति प्रोच्यतेऽष्टाङ्गयोगिभिः ।
ब्रह्मेत्युपनिषन्निष्टैर्ज्ञानं च ज्ञानयोगिभिः ।

अर्थात्—अष्टाङ्गयोगिजन इसी भगवान् को 'परमात्मा' उपनिषद्—निष्ठ वेदान्तीजन 'ब्रह्म' तथा ज्ञानी, योगी 'ज्ञान' कहते हैं ।

पुनः श्रीमद्भागवत में कहा है—

वदन्ति तत् तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमव्ययम् ।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ।
(१ । २ । ११)

श्रीकृष्ण ही भगवान् हैं । श्रीकृष्ण ही 'परमात्मा' हैं और श्रीकृष्ण ही 'ब्रह्म' हैं ।

न्यायविवरण में श्रीकृष्ण वासुदेव की पूर्णता का कैसा सुन्दर वर्णन हुआ है—

पूर्णानन्दः पूर्णभुक् पूर्णकर्ता पूर्णज्ञानः पूर्णभाः पूर्णशक्तिः ।
पूर्णैश्वर्याद् भगवान् वासुदेवो विरुद्धशक्तिर्न दोषस्पृगीशः ।

अर्थात्—षडैश्वर्यपूर्ण भगवान् में पूर्ण आनन्द, पूर्ण भोक्तृत्व, पूर्ण-कर्तृत्व, पूर्णज्ञान, पूर्ण ज्योति, पूर्ण शक्ति, पूर्ण ऐश्वर्य, विरुद्ध शक्तित्व तथा अदोषस्पर्शित्व गुण विद्यमान हैं ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीयामुन मुनि जी ने कहा है—

'तद् ब्रह्मकृष्णयोरैक्यात्' अर्थात्—उस ब्रह्म और श्रीकृष्ण में वैसा ही एकत्व है, जैसा सूर्य और किरणों में होता है।

निष्कर्ष—

यद्यपि व्यवहार में वैराग्य से या ज्ञान से, ऐश्वर्य से, धर्म से, इन किसी भी एक भाग के उपाय से यथा कथञ्चित् अवतरणों के निराकार से परमअप्राप्त कुछ महात्मा एवं विद्वानों को आत्मसाक्षात्कार होने पर भगवान् शब्द से व्यवहृत किया जाता है, किन्तु ऐश्वर्यादि सर्वविधि से ही नित्यसिद्ध सर्वथा सर्वविध अविद्या (राग, द्वेष, संमोह, अस्मिता, अभिनिवेश) आदि के निराकरण से प्रस्फुट अव्ययात्मा इस कृष्ण वासुदेव को ही पूर्ण अव्ययावतारत्व लक्षण अच्युतत्व सर्व सम्प्रतिपन्नता इष्ट है। अच्युत भगवत्तत्व ही महापुरुष लक्षण होता है।

अथ भगसंज्ञक विद्याबुद्धि योग से पूर्वोक्त अविद्याबुद्धियां निवृत्त हो जाती हैं। अतः विद्याबुद्धिप्रकाशवशआत्मसाक्षात्कृत पुरुष को ही 'भगवान्' कहा जाता है। इस भगवान् की अनन्तशक्ति ज्योति रूप से प्रकाशित होती है। इस प्रकाश विशेष से ही इस भगवान् के अतीत तथा अनागत सम्पूर्ण जन्म प्रत्यक्ष होते हैं इससे इसको जाति स्मृति भी होती है। इसीलिये कहा जाता है – 'उत्पत्ति प्रलयं चैव' इत्यादि।

ऐश्वर्यादि इन षड्भागों का मेघावरणापाय में सूर्य किरणों की तरह स्वयमेव जहाँ अविर्भाव होता है, उनको भगवान् कहते हैं। यह व्यय पुरुष बहुविध शक्ति विशिष्ट होता है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न त्वत्सम्यश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभावकी ज्ञान बल क्रिया च ।

(श्वेताश्वतर ६।८)

पुनः श्रीमद्भागवते भगवान् शब्दः—

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ।
न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ।

(भा०-१०।२।६)

तथा—इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलधृक् स्वयम् ।
संकल्पसिद्धयेतेषां कृपयैतदचिन्तयेत् । इत्यादि ।

[भा० १०।२८।१२।१३।१४।१५]

तथा—यथोर्णनाभिर्भगवान् स्वशक्तिभिः ।

(भा. ३।२१।१९)

पुनः— विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्यगवस्थितम् ।
सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ।

[भा० २।६।३७]

पुनः— न यं विदन्ति तत्वेन तस्मै भगवते नमः [भा. ६।३७]
स तदैवात्मनाऽत्मानं निःसंगं समदर्शनम् ।
हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ।
ज्ञानमात्रं परं ब्रह्म, परमात्मेश्वरः पुमान्
दृश्यादिभिः पृथग्भावै भंगंवानेक ईयते ।
श्रीकपिलमहर्षि [भा० ३।३२।२५।२६]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीजडभरत रहूगण के प्रति—

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्व बहिर्ब्रह्म सत्यम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति।

[५।१२।११]

तथा- भगवान् सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः।

[भा० २।२।३५]

एवं परो भगवान् वासुदेवः क्षेत्रज्ञआत्मेदमनुप्रविष्टः।

[५।११।१४]

यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथक् मर्त्यः प्रतीयते।
अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा।
यथोल्मुकाद् विस्फुलिङ्गाद् धूमाद्वापि स्वसंभवात्।
अप्यात्मत्वेनाभिमताद् यथाग्निः पृथगुल्मुकात्।
भूतेन्द्रियान्तः करणात् प्रधानाज् जीव संज्ञितात्।
आत्मा तथा पृथग् द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः।

भगवान्—

वदन्ति तत् तत्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमव्ययम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।

(भाग० १।२।११)

अर्थात्—उसी एक अव्यय परमार्थ तत्व को ज्ञानी लोग ब्रह्म योगीजन परमातमा और भक्तगण भगवान् कहते हैं।

ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति।

(भाग० ५।१२।११)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परमार्थभूत—ज्ञान, सत्य, विशुद्ध, एक, बाहर-भीतर-भेद रहित, परिपूर्ण, अन्तर्मुख तथा निर्विकार है—वही भगवान् तथा वासुदेव शब्दों द्वारा अभिहित होता है।

भगवान् के इन अर्थों से स्पष्ट होता है कि वे अपने पूर्णज्ञान के कारण समस्त प्राणियों के मन को जान कर तदनुकूल उपदेश देते हुए पूर्व अध्यायों में आये हैं।

यथा—मानव के कल्याण के लिए श्रीगीताजी में तीन प्रतिपाद्य विषय हैं। कर्म, उपासना वा भक्ति और ज्ञान। पूर्वषट्क में कर्म का प्रधान रूप से विवेचन हुआ है, उसी में कर्मयोग सिद्धान्त का भी वर्णन हो जाता है। इस षट्क में उपासना तत्व है, किन्तु इस द्वादश अध्याय में ईश्वर भक्ति भी ईश्वर से सम्बन्ध रखती है, इसलिये भक्ति का निरूपण विशेष रूप से हुआ है। इसीलिये श्री मधुसूदन सरस्वती ने अपने 'भक्ति रसायन' ग्रन्थ में भक्ति को फलरूप और अन्तिम साध्य माना है। भगवद् भक्ति प्राप्त हो जाने पर पुनः अन्य किसी भी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा नहीं रहती। यह सिद्धान्त अभिव्यक्त किया है।

आयुर्वेद के 'चरकसंहिता' ग्रन्थ के महान् दार्शनिक टीकाकार श्रीचक्रपाणिदत्त ने अपनी व्याख्या में इस तरह भगवान् शब्द का अर्थ किया है—

उत्पत्ति प्रलयं चैव भूतानामगति गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यदि वा भगशब्दः समस्तैश्वर्यमाहात्म्यादिवचनः । यथोक्तम्—ऐश्वर्यस्य समस्तस्येत्यादि । (च० सू० १ सू० २)

अमरकोश में—स्वर्ग और स्वर्गवासी देव-सामान्य का नाम निर्देश करने के बाद सर्व प्रथम भगवान् बुद्ध की ही नामावली गिनाई है। श्रीरामचन्द्र का इस ग्रन्थ में अन्त तक कहीं नाम ही नहीं है।

यथा—अन्य व्यक्ति वाचक शब्दों को वशिष्ठ, विश्वामित्र, दशरथ, दिलीप, बाल्मीकि आदि को इस ग्रन्थ में छोड़ दिया है, वैसे ही श्रीराम को भी छोड़ दिया, किन्तु श्रीकृष्ण का नाम अवश्य आया है।

'विष्णुर्नारायणः कृष्णः' से प्रारम्भ कर के 'देवकीनन्दन, वसुदेव-सूनु' भी कहा है। इसके कर्ता अमरसिंह हैं। ये बौद्ध थे। अमरसिंह ने विष्णु को श्रीकृष्ण के रूप में अङ्कित किया है। इसमें वलरामजी प्रद्युम्न (कृष्ण पुत्र) का नाम भी है। इससे स्पष्ट होता है कि इन्होंने बौद्ध होते हुए भी प्रच्छन्न श्रीकृष्ण भक्ति के कारण ही उनका नाम दिया है, या उस समय विश्वव्यापिनी श्रीकृष्ण की भक्ति के प्रबल प्रवाह के कारण हो।

साहित्य शास्त्रीय लक्षणग्रन्थों के मूर्धन्य लेखक श्रीमम्मटाचार्यकृत काव्यप्रकाश में—

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।

(प्रथ० उ० २)

इस कारिका में शब्द प्रधान—अर्थ प्रधान तथा रस प्रधान तीन उपदेश शैलियों की कल्पना की गई है। उनको क्रमशः 'प्रभुसम्मित'

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'सुहृत्सम्मित' तथा 'कान्तासम्मित' नामों से निर्दिष्ट किये हैं । वेदशास्त्र आदि की शैली 'प्रभुसम्मित' शैली है। 'अहः-अहः सन्ध्यामुपासीत' आदि उपदेशों को अक्षरशः पालन करना ही अभीष्ट होता है। प्रभु अपने भृत्यों को आज्ञा देता है कि तुम अमुक कार्य करो। हम क्यों करें यह कोई प्रश्न का अधिकार नहीं है, केवल राजाज्ञा तथा प्रभुकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। यद्यपि वेदों में बहुत कर्मों के उद्देश्य तथा फल भी कहे हैं. तथापि सभी आज्ञाओं में उपपत्तिका वर्णन नहीं है, इसलिये अधिकांश कर्म केवल आज्ञा पर ही निर्भर हैं।

दूसरी उपदेश शैली इतिहास पुराण आदि की है। इनमें वेदादि शास्त्रों की तरह आज्ञा की प्रधानता नहीं होती—यहाँ एक मित्र दूसरे मित्र को उचित कार्य के अनुष्ठान करने तथा अनुचित काम के परित्याग करने का उपदेश करता है। यह सुहृत्सम्मित उपदेश है। इससे श्रोता अपने कर्तव्य का निश्चय कर लेता है कि इस कार्य का परिणाम अच्छा है और इस का बुरा है। न्यायमार्ग में चलने वाले के सहायक मनुष्य ही नहीं भालू बानर आदि भी होते हैं, जैसे भगवान् श्रीरामचन्द्र की इन्होंने सहायता की है। अन्याय मार्गावलम्बी को अपना सोदर भी छोड़ देता है, जैसा कि विभीषण ने रावण को छोड़ दिया। यह उपदेश का मार्ग प्रथमकी अपेक्षा अधिक व्यापक एवं प्रशस्तहै। तीसरी शैली को 'कान्ता-सम्मित उपदेश' कहते हैं। स्त्री जब किसी कार्य में पुरुष को प्रवृत्त करती है, तब वह अपनी सम्पूर्ण सामर्थ्य से उस को सरस बनाकर ही उसकी प्रेरणा करती है। इसका प्रकार बहुत रुचिकर होता है। इस तरह के उपदेश काव्य नाटकों में मिलते हैं तथा कवियों ने इसी ध्येय से काव्य-नाटकादि की रचनाएं की है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमद्भगवद् गीता—महाभारत के अन्तर्गत भीष्मपर्व में लिखी गई है। इसको द्वितीयश्रेणी का उपदेशही मानना चाहिये। इसमें केवल आज्ञा ही नहीं दी गई है। प्रत्येक स्थान में युक्तिपूर्वक कार्यकारणभाव समझाया गया है। तथा श्रोता के सन्देहों का विधिवत् निराकरण भी किया गया है, क्योंकि 'भगवद्गीता' एक अत्यन्त प्रसिद्ध लोकप्रिय धार्मिक ग्रन्थ है। इसलिये भारतीय साहित्य में सबसे अधिक टीकाएँ 'भगद्गीता' पर लिखी गई हैं। इतनी अधिक टीकाओं का होना जहाँ एक तरफ ग्रन्थ की लोकप्रियता का परिचायक है, वहाँ उसकी क्लिष्टता और दुरूहता का भी द्योतक है। यह 'सुहृत्सम्मित' उपदेश ही है।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः। २।

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन? मेरे व्यक्त रूप में मन लगा कर नित्ययोग करते हुए जो 'भगवान् मेरी अवश्य रक्षा करेंगे' इस श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर[1] मेरी—व्यक्त रूप की उपासना करते हैं,[2] वे श्रेष्ठ योगी हैं, ऐसा मेरा मत है।

वक्तव्य—यहाँ 'मयि' यह अस्मद् शब्द ईश्वर वाचक ही है।

---

१. अवश्यं परमात्माऽस्माराधितोऽस्मांस्तारयिष्यतीत्येवं निश्चयरूपया श्रद्धया उपेताः (नीलकंठी)।

२. उपासना—पूजा, निरन्तर ध्यान।
'उपासनं नाम—यथा शास्त्रम् उपास्य अर्थस्य विषयीकरणेन सामीप्यम्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीगीताजी में अस्मद् शब्द का जहाँ-जहाँ प्रयोग हुआ है, वहाँ यही अर्थ लिया गया है। यहाँ पर ईश्वर के साकार तथा निराकार रूपों में साकार रूप ही लिया जाता है, क्योंकि निराकार रूप का पृथक् वर्णन करेंगे।

श्रीशङ्कराचार्य के मत में—साकारोपासकों को श्रेष्ठ कहने का यही तात्पर्य है कि साकारोपासना में क्लेश कम होता है तथा निराकारोपासना में क्लेश अधिक होता है।

श्रीपुरुषोत्तमजी के मत में—यहाँ 'अस्मद्' शब्द का अर्थ पुरुषोत्तम अव्यय पुरुष ही है। कई टीकाकारों ने अर्जुन योगारूढ नहीं हैं, इसलिये उनको साकारोपासना का ही उपदेश देना उत्तम समझा है, ऐसा कहते हैं। सिद्धान्ततः साकारोपासना सर्वसाधारण सुलभ होती है, अतएव यह श्रेष्ठ है।

स्वामी श्रीशङ्करानन्दजी कहते हैं—घर में रहते हुए केवल मोक्ष की ही कामना से मत्कर्मकृत्वादि मोक्षसाधनों में निष्ठावाले होकर सदा सर्वत्र मेरी ही भावना करते हुए जो कालयापन करते हैं, वे ही श्रेष्ठ योगी हैं[1]।

उपगम्य तैल धारावत् समान प्रत्यय प्रवाहेण दीर्घकालं यद् आसनम्, तद् उपासनमाचक्षते।' (शङ्कराचार्यः) कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासुसर्वदा। समीपसेवा विधिना उपास्तिरिति कथ्यते। इस 'कुलार्णवतन्त्र' में उपासना की परिभाषा में यही कहा है कि सभी प्रकार से समीप रह कर सेवा करना।

१. गृहएव वर्तमाना मोक्षैककामनया मत्कर्मकृत्वादिमोक्षसाधनपरिनिष्ठिता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपासनाशब्द संस्कृत साहित्य में बहुत ही व्यापक है। यथा-ऋग्वेद २।२७।७, १०।१५४१, अथर्व ६।४२।२, तैत्तिरीयसं० १।६।१०।१ मैत्रेयी-संहिता २।१ श्रीमद्भागवत, उपासितो यत्पुरुषः पुराणः (१।५।६) त्वत्पादारविन्दं भवसिन्धुयपोतम्। उपासते कामलवाय तेषाम् (३।२१।१४) वाल्मीकीयरामायण, उपासांच-क्रतुर्वीरौ यत्तौ परमधन्विनौ (१।३०।६) नैषधमहाकाव्य, उपासनांमित्यपितुः स्म रज्यते दिने दिने साऽवसरेषु वन्दिनाम्। पठत्सु तेषु प्रतिभूपतीनलं विनिद्ररोमाऽजनि शृण्वती नलम् (१।३४) आदि में पूर्णभक्ति-सेवा-प्रणाम, ध्यान-वन्दना आदि अर्थों में उपासना शब्द का व्यवहार हुआ है।

योगवासिष्ठ ५।४२।२५ 'ब्रह्मसूत्र' अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् १।२।२४ 'अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः' (१।२।३०) भावं तु बादरायणोऽस्ति हि १।३।३२। आदि के शाङ्कर एवं रामानुज भाष्यों में भगवद्ध्यान-को ही सर्वोच्च उपासना का क्षेत्र माना है।

उपासना के समय में परमेश्वर उपासक को अवश्य ही दर्शन देते हैं—

ध्यानयोगेन सम्पश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः।
सम्यग् दर्शनसम्पन्नः कर्मभिर्न निबध्यते।
ध्यानयोगेन यः पश्येद् ब्रह्माभ्येति सनातनम्। (मनु ६।७३।७४)

भूत्वा सदा सर्वं मामेव भजन्तः सन्तो ये कालं नयन्ति तेषामेव युक्त' योगवरिष्ठत्व-मित्यभिप्रायः (शङ्करानन्दी)।

ईश्वरव्यतिरेकेण कैवल्यात्मनोऽक्षरस्यानवस्थानादक्षरोपासनाया ईश्वरोपासना-वदीश्वरप्रापकत्वेऽपि निर्गुणात्मनि मनोबुद्धिसंचारे क्लेशाधिक्यान्नात्यन्तमपेक्षा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उपासना में पूर्णश्रद्धा एवं क्रोध-अपवित्रता-अनवधानता नहीं हो।
श्रद्धा बिनाधर्म नहिं होई। बिनु महि गन्ध कि पावइ कोई।
कामक्रोध मदलोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुवीर ही भजहु भजहिं जेहि संत (रामच०सुन्द०२।३८)
तात तीनि अतिप्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि विग्यान धाम मन करहिं निमिष महं छोभ।
(रा०च०मा०अर० दोहा ३८)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्। ३।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः। ४।

जो समस्त इन्द्रियों को वश में रखता हुआ, सर्वत्र समबुद्धि रख कर, जो दृढ़, अचल, धीर, अचिन्त्य, सर्वव्यापी, अव्यक्त, अवर्णनीय, अविनाशी स्वरूप की उपासना करते हैं, वे सर्व प्राणियों के हित में लगे हुए मुझे ही प्राप्त करते हैं।

वक्तव्य—जो अधिकारी अपनी समस्त इन्द्रियों को विषयों में जाने से अच्छी तरह रोक कर के (सभी ध्यान मार्गों में इसकी आवश्यकता होती है) तथा सर्वत्र समबुद्धि होकर (सुख दुःख की प्राप्ति के लिये चित्त में कुछ भी विकार न होना, अथवा देहों के भिन्न होने पर भी सभी में ज्ञान रूप एक ही है, इस प्रकार आत्मा पर ही दृष्टि रखना) एवं इसी भावना से सब प्राणियों के हित करने में सदा तत्पर रहते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं, और अक्षर अनिर्देश्य, अव्यक्त, सर्वव्यापी, अचिन्त्य, कूटस्थ, अचल एवं ध्रुव तत्व की उपासना करते हैं, वे मेरे को ही प्राप्त करते हैं।

इन दो श्लोकों में अक्षर की उपासना से क्या लाभ होता है तथा अक्षर के ही सात विशेषण दिये हैं। इन अक्षर के विशेषणों से स्वरूप का निर्देश किया गया है।

अक्षर -- अविनाशी, ब्रह्म। अर्थात् सर्वधर्म रहित निर्विशेष ब्रह्म ही अक्षर शब्द का वाच्य है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में (उ० ३।८।८)---जनक की सभा में गार्गी-को उत्तर देते हुए श्रीयाज्ञवल्क्य ने कहा है कि 'एतद् वैतदक्षरं गार्गि ? ब्राह्मणा अभिवदन्ति-अस्थूलमनणु, अह्रस्वम् दीर्घमलोहितमस्नेह-मच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमस्पर्शमगन्धमरसमचक्षुष्कमश्रोत्रमवाग मनोऽतेजस्कमप्राण-मनामगोत्रमजरममरमभयममृतमरजस्कोऽशब्दमविष्टम् इत्यादि।

'अक्षरमम्बराधृतेः' (वेदा० १।३।१०) इत्यादि श्रुति न्यायसिद्ध। अश्नुते व्याप्नोति सर्वं, कारणत्वात्, अत एव च न क्षरति विनश्यति चेत्यक्षरम्, अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते, यद् तद् अद्रेश्यम्, अग्राह्यम् (मुण्डको० १-६) अनिर्देश्य[1]--किसी शब्दसे नहीं कहा जा सकता। वर्णन करके समझाने के लिये कठिन। प्रत्यक्ष नहीं दिखलाये जाने वाले, अनिर्वचनीय।

---

१. न निर्देशार्हमिदमित्थमिति वक्तुमशक्यम्, किन्तु शाखाचन्द्रन्यायेनाधिगम्यम्, अनिर्देश्यम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अव्यक्त[१]–अदृश्य बुद्धि से भी उस का ग्रहण नहीं हो सकता। जैसा श्रुतियों में स्पष्ट है––यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। अर्थात् मन और वाणी जिसकी प्राप्ति न कर के बीच से ही लौट आते हैं। अर्थात् जो किसी भी अनुमान आदि प्रमाणों से नहीं जाना जा सकता, अथवा इन्द्रियों से अगम्य।

सर्वत्रग––सर्वव्यापक, सब जगह विद्यमान अर्थात् सब स्थानों में व्याप्त। मन और वाणी में न आने वाले तत्त्व को क्यों माना जाय इस का उत्तर भी 'सर्वत्रग' इस विशेषण से हो जाता है क्योंकि सत्ता और स्फुरण रूप से समस्त जगत् में व्याप्त है। इसलिये इस का मानना आवश्यक है।

अचिन्तनीय[२]––अचिन्तनीय, अपरिवर्तनीय, मनन करने के लिये कठिन। अर्थात् मन में भी आने योग्य नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि–नैयायिक तो सत्ता और विषयता को प्रत्यक्ष मानते हैं, किन्तु सर्वत्र व्यापक ब्रह्म किसी भी प्रमाण के द्वारा जाना नहीं जा सकता सत्ता आदि से भिन्न ब्रह्म को मानने की युक्ति यह है कि सत्ता में सत्ता न्यायमतानुसार नहीं मानी जाती, किन्तु सत्ता भी अवश्य ही सत् कही जाती है। यदि सत्ता असत् हो जायगी तो वह भावरूप पदार्थ ही

---

१. अव्यक्तम्—व्यक्तिरहितम्। श्रीवत्साद्यङ्कैः श्रुतं मनसि कल्पयित्वा परोक्षेण सगुणमिवोपासितुमशक्यम्।

२. केनापि प्रकारेण चिन्तयितुमशक्यम्, आत्मतयाऽधिगतमेवोपास्यं, न तु परोक्षेण तच्चिन्त्यमित्यभिप्रायः। (वामनः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं रहा, इसलिये सत्ता में भी ब्रह्म अनुगत है--यह मानना आवश्यक होगा।

१ समस्त पदार्थों के प्रकाशक उनसे भिन्न, दीपक आदि हैं।

कूटस्थ[1]– सबके मूल में रहने वाले (तिलक)। गतिरहित (राधाकृष्ण)। सबसे उच्च भाग में स्थिति (शातवले०)। कूट शब्द छल से किये जाने वाले असत्य व्यवहार में 'निरूढ' है। इससे यहाँ कूट शब्द से माया को लेना चाहिए, उस माया में स्थिति है, अर्थात् माया के अन्तर्गत न होकर अधिष्ठाता रूप से उसके ऊपर विराजमान है (श्री गिरिधर)। नैयायिकों की मानी हुई सत्ता से ब्रह्म की विशेषता इस कूटस्थ विशेषण से भी सिद्ध होती है। असत्य पदार्थ को सत्य कह देना ही कूट होता है। यहाँ

---

१. कूटस्थम्—निर्विकारं चैतन्यं सर्ववृत्तिप्रकाशकमपि वृत्तिभिरलिप्तम्, तस्य वृत्तिभिरेवैकगम्यत्वात्। (अविगीता) दृश्यमानगुणकमन्तर्दोषं वस्तु कूटं कूटरूपं कूटसाक्ष्यं, इत्यादौ कूटशब्दः प्रसिद्धो लोके। तथाचाविद्याद्यनेकसंसारबीज मन्तर्दोषवन्मायाव्याकृताद्यनेकशब्दवाच्यतया "मायांतु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्। (श्वे० उ० ४।१०)" मम माया दुरत्यया (७।१४) इत्यादौ प्रसिद्धं यत् तत् कूटं तस्मिन् कूटे स्थितं तदध्यक्षतयाऽथवा राशिरिव स्थितं कूटस्थम् (शां. भा.) कूटस्थम्—देवाद्याकारेष्वपरिणितं स्वासाधारणाकारेणैव सर्वदास्थितम्–(आनन्दभाष्यम्)। मिथ्यात्वेसति सत्यतया प्रतीयमानं कूटमित्युच्यते, कूट साक्षित्यादिलोकव्यवहारात्। मायामयं जगदपि तथाभूतत्वात्कूटम्। तस्मिन् कूटे जगति साक्षितया तिष्ठतीति कूटस्थम्। तथाच सर्वसाक्षित्वान्न मनोवृत्तिविषयत्वम्, "नदृष्टेर्द्रष्टारं पश्येः······न मतेर्मन्तारम्" (बृ० उ० ३।४।२) इति।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कूट शब्द से अहङ्कार अर्थ लेना चाहिए। अहङ्कार का अर्थ है—देह इन्द्रिय आदि में अहं यह बुद्धि। यह मिथ्या है। इसका भी प्रकाशक चैतन्य आत्मा वा ब्रह्म ही है, क्योंकि यह देहादि में अहं बुद्धि भी भासमान् होती है तथा जो भासमान् हो उसका प्रकाशक कोई उससे अतिरिक्त होना चाहिए। जैसा घट, पट आदि इसी तरह अहं, बुद्धि का प्रकाशक भी इस बुद्धि से विलक्षण एक चैतन्य आत्मा मानना स्वतः सिद्ध हो जाता है।

अचल—वह अचल[1] भी है, चलन क्रिया माया का धर्म है, वह माया के अधिष्ठाता में नहीं रह सकता।

इसका अर्थ यह है कि—'अहं सुखी, अहं दुःखी' इत्यादि रूप से परिवर्तन अहं प्रतीति में हुआ करते हैं तथा 'अहमिहैव गृहे तिष्ठामि' (मैं इस घर में ही बैठा हूँ) इत्यादि अनुभवों के अनुसार एक प्रदेश में रहना भी प्रतीत होता है, यदि ऐसा ही आत्मा माना जायेगा तब तो वह शरीर आदि की तरह अनित्य ही होगा ? फिर शरीर आदि से भिन्न आत्मा मानना ही व्यर्थ हो जायगा, इसलिये आत्मा को तो अचल मानना चाहिए।

ध्रुव—वह ध्रुव है, जिसमें अवस्था परिवर्तन नहीं हो, उसको ध्रुव कहते हैं। यह निरन्तर एक-सा रहने वाले, शाश्वत, काल

---

१. अपरिणामित्वेन स्वासाधारणाकारान्न चलति न च्यवत इत्यचलम् (रा. भा.) अहमर्थो हि सुखी दुःखी परिणाम्याविर्भावतिरोभावशीलश्चताश्चञ्चलः, आत्मातु न तथा। तस्य तथात्वेऽनिर्मोक्षापत्तेः, वन्ह्यौष्ण्यवद्दुःखादिधर्मिण आत्यन्तिक दुःख नाशस्य मोक्षस्य धर्मिनाशमन्तरेणासम्भवात् (नीलकंठः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परिच्छेद रहित, स्थिर है। आत्मा अवश्य ही नित्य है और निश्चल भी है। नित्य निश्चल ही ध्रुव शब्द का अर्थ है। प्रगाढ़ निद्रा में भी प्रकाश रहता ही है, तभी तो जागने पर 'मैं बड़े आनन्द में सोया' इस प्रकार निद्रा में अनुभव किये आनन्द का स्मरण होता है। यदि निद्रा अवस्था में आनन्द का अनुभव न हुआ हो तो स्मरण कैसे होता। बिना अनुभव के तो स्मरण हो ही नहीं सकता; इसलिये प्रगाढ़ निद्रा में आनन्द व प्रकाश सिद्ध हो जाता है। बुद्धि के मलिन रहने के कारण अज्ञान का भी स्मरण होता है, वही अज्ञान सबको ढँक कर रखता है। इसलिये बुद्धि आदि की प्रतीति नहीं होती। इस ध्रुव विशेषण से आत्मा सबका प्रकाशक माना जाता है, परिवर्तन भी नहीं होता, इसलिये सदा ही उसका प्रकाश रहता है, यह मानना पड़ेगा। तब सुषुप्ति में कोई भी प्रकाश नहीं होता, यह बात कैसे होगी? तथा यह आत्मा इन्द्रिय आदि को प्रेरणा देता है—यह भी आत्मवादी मानते हैं? प्रेरणा देना अपने आपके बिना क्रियाशील हुए नहीं हो सकता। कुम्हार आदि को अपने व्यापार से ही चाक आदि में प्रेरणा देने वाला देखा जाता है। यदि आत्मा में क्रिया मान ली जाय तो आत्मा को सर्वव्यापक नहीं माना जा सकता, क्योंकि व्यापक आकाश आदि में क्रिया नहीं देखी जाती। इन सब प्रश्नों का उत्तर इस विशेषण से हो जाता है।

सर्वभूतेहिरताः—आत्मवत् सर्वेषां भूतानां हितेषु निरताः। यह पद श्रीगीता जी में ५—२५ है। इस की व्याख्या श्रीमधुसूदन सरस्वती इस प्रकार करते हैं—'यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाऽभूद् विजा-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नतः। तत्र को मोहः, कः शोक एकत्वमनुपश्यतः' इति श्रुतेः। अत्र च वामनः।

ज्ञातेऽपि हेम्नि सकलेषु समानरूपे
यद्वद्विभान्ति विषमाणि विभूषणानि।
विश्वं तथा विषयिभिर्विषयान् लषद्भि-
र्दृष्टं तदात्मकतया विषमं विभाति।१।

संयम्य तान्यशिथिलं सकलं जगद् ये
ब्रह्माद्वितीयमिति चेतसि चिन्तयन्ति।
लोकेषु च व्यवहरन्ति तथा स्मरन्त-
स्तेसर्वभूतहित एव रता भवन्ति।
अव्यक्तं मामुपासीना सगुणं परिहृत्य ते।
मामेवाव्यक्तमगुणं प्राप्नुवन्ति तथाविधम्।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषाव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ताहि गतिर्दुःखं देहवद्भि रवाप्यते। ५।

यद्यपि सगुण साकार की उपासना में भी इन्द्रियों को बाह्य सांसारिक विषयों से तो रोकना पड़ता है। इसलिये क्लेश तो वहाँ भी है, किन्तु कुछ अवलम्बन रहने से यह मार्ग सुकर रहता है। परन्तु अव्यक्त में मन लगाने वाले को क्लेश—अर्थात् मन बुद्धि का कष्ट अधिक होता है क्यों कि वहाँ विना किसी अवलम्बन के ही बलात् इन्द्रियों को रोकना पड़े वहां उन इन्द्रियों के दमन में देहाभिमानियों को और भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अधिक कष्ट का अनुभव होता है। वक्तव्य--उपासना चित्त को एक जगह स्थिर करने से होती है। जो साकार व्यक्त मूर्ति के उपासक हैं, उनमें 'अस्ति' अर्थात् किसी भी पदार्थ के अस्तित्व में अर्थात् वह 'ऐसा है' इस भावना में मन को टिकाने के लिये अवलम्बन हो जाता है। अतः उनको इन्द्रियों के विषयों को भगवान् की उपासना में लगाने के लिये सरलता होती है।

परन्तु 'नेति-नेति' ऐसा नहीं है। इस भाव में मन का रुकना कठिन है। अथवा इन्द्रिय गोचर पदार्थों में तो मन की एकाग्रता सहज ही हो सकती है। किन्तु इन्द्रियातीत निराकार वस्तु में मन का होना अतिदुष्कर है।

अवधूत गीता में श्रीदत्तात्रेयजी कहते हैं—

येनेदं पूरितं सर्वमात्मनैवात्मनात्मनि।
निराकारं कथं वन्दे ह्यभिन्नं शिवमव्ययम्।

अर्थात् मैं उसको किस तरह प्रणाम करूँ, जो अरूप है, अभिन्न है, जो आनन्दमय है, और अनश्वर है। जिसने प्रत्येक वस्तु को स्वयं अपने द्वारा अपने में ही व्याप्त कर रखा है। इन शब्दों का अभिप्राय यह है कि—समस्त वस्तु एवं व्यक्तियों की आत्मा उस सजीव ईश्वर एवं साकार की अपेक्षा लोकातीत परमेश्वर अपरिवर्तनशील निराकार को मनके द्वारा सरलता से ग्रहण नहीं किया जा सकता तथा यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्त ईश्वर की भक्ति-मार्ग द्वारा अपनी समस्त शक्तियों [शान्त संकल्प, अनुवादी] को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

साकार परमेश्वर कीं तरफ लगाने से अधिक सुगम एवं अल्प कष्ट से भगवान् की प्राप्ति कर सकते हैं।

इसीको श्री मधुसूदन सरस्वती ने इस श्लोक द्वारा स्पष्ट किया है—

"ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा तन्निगुंणं निष्क्रियम्" अर्थात् यदि कोई परमतत्व वादी योगी ध्यान लगाकर निगुंण तथा निष्क्रिय ज्योति के दर्शन करते हैं, तो वे अवश्य दर्शन करते रहें। मेरी तो केवल यही लालसा है कि मेरे प्रसन्न नेत्रों के सामने तो वह श्याम ही प्रकट होता रहे, जो यमुना जी के रेतीले तट पर दौड़ता रहता है।

इस श्लोक से भगवान् ने अव्यक्त प्रभुका ज्ञान देहाभिमानियों को अधिक कष्ट से प्राप्त होता है, यह जान कर ही षडैश्वर्यपूर्ण दिव्यरस-राज करुणावरुणालय-नर वपुधारी होकर जनता जनार्दन के समक्ष न होते तो मानव किस आधार पर भगवान् में प्रेम दर्शन एवं श्रद्धा की प्राप्ति कर सकता था।—

श्रीमद्भागवत् में श्री व्यास ने कहा है—(११।२६।४६)

यद् यद् धियास उरुगाय विभावयन्ति।
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥
भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं
निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद् वेदसारम्।
अमृतमुदधितश्चापाययद् भृत्यवर्गान्
पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भवभय को दूर करने के लिए सम्पूर्ण वेदोपनिषदों का मन्थन करके उसका सार गीता के रूप में जिन्होंने प्रकट किया एवं अपने सेवक 'अर्जुन' उद्धवादि को पिलाया, उन आदि पुरुष पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र को मैं प्रणाम करता हूँ।

श्री मद्भागवत में भी गीता के इस श्लोक के समान ज्ञान को दुस्साध्य माना है, इसका उदाहरण श्रीमद्भागत १६-१-७ श्लोकों में जीवन्मुक्त सर्व ऋषिमुनिमान्य परमयोगी श्री शुकदेवजी महाराज विवेक वैराग्यसम्पन्न मुमुक्षु धर्मज्ञानपूर्ण—मानस मृत्यु की प्रतीक्षा करने वाले महाराज परीक्षित से कहते हैं—

हे राजन्! मन वचन और शरीर से किये गये पापों का यदि मनु आदि द्वारा कथित धर्मशास्त्रों के आदेशानुसार इसी जन्म में प्रायश्चित्त न किया गया तो वह पापी मृत्यु के उपरान्त नरकों में अनेकविध भयानक यातनाओं को भोगता है। इसलिए जैसे वैद्य दोषों की गुरुता एवं लाघवता के अनुसार अतिशीघ्र चिकित्सा प्रारम्भ कर देता है, वैसे दोषों की गुरुता एवं लघुता के अनुसार शरीर के अशक्त होने के प्रथम ही इसी जन्म में शीघ्र पापों का प्रायश्चित कर देना चाहिए, विलम्ब करने से अत्यधिक पापों की वृद्धि होगी। इसलिये पापों को नष्ट करने का अति सरल उपाय भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति ही है। इसमें प्रसिद्ध दृष्टान्त अजामिलका है, जिसने अपने लड़के का नाम 'नारायण' रक्खा था। मरते समय उस पुत्र को 'नारायण-नारायण' कह कर पुकारने मात्र से ही अन्त में भगवान् के चरणों में सद्गति मिल गयी थी—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री सर्वकर्मार्पणरूपेश्वराव्ययोपासनाया अनायासेना-
विलम्बेन च परमपुरुषार्थप्रदायित्वात् श्रेष्ठत्वम् ।

सर्वकर्म समर्पणपूर्वक भक्ति—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।६।

अर्थ—किन्तु जो सम्पूर्ण कर्मों को मेरे अर्पण कर मेरे प्रति ही तत्पर रह कर अनन्य-भाव रूप योग से मेरा ध्यान करते हैं।

भावार्थ—सगुण साकार की उपासना करने वालों को यह ध्यान रखना चाहिये कि सगुण साकार रूप भी चित्त युक्त है, वह अपने चित्त से देखा करता है कि कौन-कौन मेरा ध्यान करते हैं। इसी दृष्टि से ही परमेश्वर अपने भक्तों की सहायता करते रहते हैं। यह ईश्वर की सहायता का बहुत अवलम्ब सगुण साकार उपासकों को ही प्राप्त होता है। अव्यक्त अक्षर ब्रह्म की उपासकों को नहीं होता। क्योंकि अक्षर ब्रह्म का चिन्तादि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होने से यह कैसे जाना जा सकता है कि इस समय मेरी कौन उपासना करते हैं, ऐसी स्थिति में समुद्धार कैसे होगा। अतः जिसका स्वभाव वैराग्य एवं संन्यास की तरफ नहीं है, उनके लिये भक्ति का मार्ग अधिक सुगम है।

'न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ।'

(भाग० ११-२-७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अर्थात् भक्ति का मार्ग उसके लिये सर्वथा अधिक उपयोगी होता है, जो संसार से न तो बहुत ऊबा हुआ है, न संसार में बहुत आसक्त है।

अनन्येनैव योगेन[1]—अपने आपको भगवान् से भिन्न न समझ कर जो भगवान् में अपने अंशीरूप से प्रेम करना या अन्य किसी देवता की तरफ ध्यान न देकर केवल श्रीकृष्ण में ही प्रेम करना या अन्य सांसारिक वस्तु—धन, स्त्री, पुत्र आदि में मन न लगा कर भगवान् में प्रेम पूर्वक मन को लगा देना। अथवा समस्त पदार्थों को ब्रह्म रूप भगवान् में प्रेम पूर्वक चित्त का लगाना इत्यादि व्याख्याकारों ने अर्थ किये हैं।

इस तरह की अनन्य भक्ति से भगवान् का तात्विक-ज्ञान और दर्शन हो सकते हैं।

मां ध्यायन्तः[2]—सर्वत्र मेरा ही चिन्तन करने वाले भक्तों को श्री मधुसूदन जी की व्याख्या में कहा है कि सकल सौन्दर्यनिधि,

---

१. अनन्येन—न विद्यतेऽन्यद् मद्व्यतिरिक्तं बुद्धेरालम्बनं यत्र सोऽनन्यः, तेन। शंकरानन्दी।

२. मां भगवन्तं वासुदेवं सकलसौन्दर्यसारनिधानमानन्दघनविग्रहं द्विभुजं चतुर्भुजं वा समस्त जनमनोमोहिनीं मुरलीमनोहरैः सप्तभिः स्वरैरापूरयन्तं वा करकमलकौमोदकीरथाङ्गसङ्गिपाणिपल्लवं वा नरसिंहराघवादि रूपं वा यथादर्शितविश्वरूपं वा (मधुसूदनः)।

ध्यानं नाम—शब्दादिभ्यो विषयेभ्यः श्रोत्रादीनि करणानि मनसि उपसंहृत्य मनश्च प्रत्यक् चेतयितरि एकाग्रतया यत् चिन्तनं तद् ध्यानम्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्द घनमूर्ति, द्विभुज या चतुर्भुज, समस्त जीवों के मन को मोहित करने वाली अत्यन्त मनोहर मुरली को सात स्वरों से बजाते हुए अथवा कर कमलों में शंख, पद्म, कौमोदकीगदा और चक्र धारण करने वाले भगवान् वासुदेव रूप मेरा अथवा मेरे नरसिंह और राघवादि रूप का अथवा जैसा कि तुम्हें दिखाया है, उस विराट रूप

तथा 'ध्यायतीव वकः' 'ध्यायतीव पृथिवी ध्यायन्तीव पर्वताः' (छा० उ० ७।६।१) इति उपमोपादानात्तैलधारावात्संततः अविच्छिन्नप्रत्ययोध्यानम् ।

ध्यान० — ध्यै चिन्तायामिति धातुः । भावे ल्युट् । अनाक्षिप्तेन मनसा मुहुर्मुहुः विष्णुचिन्तनम् ।

अग्निपुराणे—

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातु र्विष्णुचिन्ता मुहुर्मुहुः ।
अनाक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते ।
अत्र विष्णुशब्दोऽखिलधेयोपलक्षकः । अभीष्टधेय-
कारवृत्तिप्रवाहो वृत्यन्तराव्यवहितो ध्यानम् ॥

तथा च पतञ्जलिः—'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' (३।२)

तथा चाभियुक्तोक्तिः—

'ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्या निरालम्बनया स्थितिः ।
ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी ॥

तथा च निष्कर्षः—वृत्यन्तराव्यवहितो ध्येयाकारोमनसः प्रवाहः । इति ।

इसका उदाहरण श्रीकालिदास ने । इति विज्ञापितो राज्ञाध्यानस्तिमित-लोचनः' (रघु० १।७३) ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायण— इत्यादि ।

यथा वा—लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitizagtion by eGangotri

का ध्यान श्री शंकराचार्य ने १३–२४ व्याख्या में कहा है कि शब्दादि विषयों से श्रोत्रादि इन्द्रियों को हटा कर उनका मन में निरोध करके और मन को अन्तरात्मा में (निरोध करके) जो एकाग्र भाव से चिन्तन करते रहता है, उसका नाम ध्यान है। 'बगुला ध्यान-सा करता है' 'पृथिवी ध्यान-सा करती है' 'पर्वत ध्यान-सा करते हैं' इत्यादि उपमा दी जाने के कारण तैल धारा की भाँति निरन्तर अविच्छिन्न भाव से चिन्तन करने का नाम ध्यान है, उस ध्यान द्वारा कितने ही योगी लोग आत्मा में, बुद्धि में, आत्मा को यानी प्रत्येक चेतन को आत्मा द्वारा शुद्ध हुए अन्तःकरण से देखते हैं।

इसी तरह दशमाध्याय श्लोक १०–११ में वर्णित—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ।१।
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।२।

ध्यानम् तैलधारावदविच्छिन्नतया भगवतश्चिन्तनम्। श्रीमद्भागवत में ध्यान शब्द का वर्णन इन प्रकरणों में हुआ है—यथा—

द्वि० १–१६। २–८–१३। ६–१६। तृ० ८–२३–३१। १५–३८–४२। २१–६–११। २८–१३–३३। च० ७–२०–२१। ८–४४–५१। २४–४५–५२। प० ४–३–४०। अ० ६–३–३। १०–५४। द० ३–६–१०। २–५। २१–५। २३–२२। ३५–२–२५। ३८–८। ३६–४४–४५। ५१–१–३–२५–२७। ए० ११–४६। १४–३६–४१। २७–३६–४६। द्वा० ६–२२–२५। इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् कहते हैं कि इस तरह नित्य संलग्न होकर प्रेम पूर्वक जो मेरा भजन करते हैं, उनको मैं ऐसा 'बुद्धि योग' देता हूँ जिससे वे मेरे को प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ श्री शंकराचार्य के मन में मेरा पूर्ण तत्व जानने वाली जो बुद्धि है, वही बुद्धि शब्द से ली गई है, उस बुद्धि के साथ उनका योग करा देता हूँ। इसी को 'व्यवसायात्मिका बुद्धि' द्वितीयाध्याय में कहा है।

नित्य मेरे ध्यान में लगे हुए उन भक्तों पर दया करने के लिये ही मैं उनके आत्मभावस्थ अर्थात् अन्तःकरण की वृत्ति में स्थित होकर उनके सदा से साथ लगी हुई अविद्या के कारण उत्पन्न संसार के मोह-रूप अंधिकार को पूर्ण प्रकाश वाले ज्ञानरूप दीपक से नष्ट कर देता हूँ। अर्थात् उन भक्तों के मनन निदिध्यासन में सहायता देकर उनके अन्तः-करण में ऐसा प्रकाश देता हूँ कि जिससे वे मेरा साक्षात्कार कर मेरे में ही लीन हो जावें।

इसके अनुसार उनके अन्तःकरण में आत्म-ज्ञान का प्रकाश करके उनके अज्ञानान्धकार का नाश कर देता हूँ।

इन श्लोकों में स्पष्ट किया है—भक्तों के अन्तःकरण में प्रथम वेदान्त वाक्यों द्वारा शब्द ज्ञान भी मैं ही उत्पन्न करता हूँ तथा आगे मनन, निदिध्यासन की शक्ति उनको देकर एवं अज्ञान का आवरण हटा कर अपना साक्षात्कार भी उनको करा देता हूँ।

निष्कर्ष—टीकाकारों ने ये भाव व्यक्त किये हैं कि - सगुण साकार रूप में जो ध्यान लगाते हैं, उनको मैं अति शीघ्र ही भगवत्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्ति करा देता हूँ। शुद्ध ब्रह्मरूप भगवच्छरणागति ही मृत्युयुक्त संसार सागर समुद्धर्ता है।

श्रीवल्लभाचार्य कहते हैं कि—सामान्यतः मेरे भक्त मेरे सगुण रूप में ही चित्त को लगाते हैं पर मेरे कृष्णरूप में ही मन लगाने में एक ऐसी शक्ति है कि उन भक्तों को परब्रह्म प्राप्ति अनायास ही हो जाती है।

यह प्रकरण श्रीमद्भागवत के रासपञ्चाध्यायी में श्रीशुकदेव जी ने परीक्षित के प्रश्नोत्तर में वर्णन किया है।

श्रीकृष्ण का अवतार संसार के कल्याणार्थ ही हुआ है, उनमें किसी भी प्रकार भक्ति करने वालों को मुक्ति मिलती ही है। यही नहीं परमहंसों में भक्तियोग का प्रचार करने को श्रीकृष्ण का अवतार हुआ था—

संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।
अवतीर्णोहि भगवानंशेन जगदीश्वरः।
अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्।

(श्रीमद्भागवत १०।३३।२७,३७)

मत्पराः[1]—ईश्वर को ही अपना श्रेष्ठ प्राप्तव्य समझो। मदेकप्रवणाः, यद् वा अहमेव विश्वरूपः परमात्मा परः स्वस्मादन्यः श्रोतव्यो द्रष्टव्यः

---

१. मत्परा देवतान्तरभजनरहिताः (वामनः)। अहं परः परमप्राप्यं येषां ते मत्परा इति हृदिविधाय मदेकप्राप्याः (वे० ता० चं०) मदुपासकानां भक्तानां

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्पृष्टव्यो मन्तव्यो ज्ञातव्यश्च पदार्थो येषां ते मत्पराः स्वव्यतिरिक्ते वस्तुनि मद्‌बुद्धय इत्यर्थः। (शं० टी०)

जो सगुणोपासक मेरे भक्त सम्पूर्ण वैदिक या अवैदिक कर्मों का मुझ परमेश्वर में त्याग कर—मेरे अर्पण कर—मत्पर (केवल मेरे परायण) होकर अथवा विश्वरूप परमात्मा में ही पर—अपने से अन्य—सुनने योग्य, छूने योग्य, मनन करने योग्य और जानने योग्य जिनका पदार्थ हूँ। वे मत्पर हैं—अपने से भिन्न सब वस्तुओं में परमात्मबुद्धि रखनेवाले। प्रथम चतुर्थश्लोक में 'सन्नियम्येन्द्रियग्रामम्। कहा है, वही यहाँ स्पष्ट किया है—महाभारत में कहा गया है कि मानव का आध्यात्मिक कल्याण इन्द्रियनिग्रह से होता है।

वेदस्योपनिषद् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत्सर्वानुशासनम्।
(शान्ति २९९।१३)

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात्‌ पार्थ ! मय्यावेशितचेतसाम्॥७॥

जो मुझे ही सबसे उत्कृष्ट मानकर मेरा ही ध्यान करते हुए मेरे तरफ ही अपनी चित्तावृत्ति को लगा देते हैं, उनका शीघ्र ही मृत्यु-

---

न क्लेशः। उक्तञ्च सौकरायणश्रुतौ—"उपासते ये पुरुषं वासुदेवमव्यक्ता-देरीप्सितं किन्नु तेषाम्" इति। "तेषामेकान्तिनः श्रेष्ठास्ते चैवानन्यदेवताः। अहमेव गतिस्तेषां निराशीः कर्मकारिणाम्"। इति च मोक्षधर्मे (म० अ०१२) आनन्दतीर्थः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रूप संसार समुद्र से मैं उद्धार करने वाला हो जाता हूँ, क्योंकि वे अपने चित्त को मेरे में ही समर्पण कर चुके हैं।

वक्तव्य—इन श्लोकों से भगवान् श्रीकृष्ण संशयात्मा अर्जुन व्यक्त तथा अव्यक्त की उपासना में नहीं फँसे एवं मनुष्य के उद्धार का निश्चित और सरल मार्ग कहते हैं।

संक्षेपतः मनुष्य के उद्धार मार्ग के लिए इन बातों की आवश्कता होती है—

१—ईश्वर में तत्परता।

२—ईश्वर को अपने कर्मों का अर्पण।

३—ईश्वर के प्रति अनन्य भाव।

जो इन तीन मार्गों पर चलेगा उसका अवश्य उद्धार होगा। इन तीनों में शरणागति (गी० ३।३०)[1] क्रियामात्र का भगवान् को समर्पण (गी० ९-२७)[2]।

श्रद्धाभक्तिपूर्वक अनुसरण (गी० ३-३१)[3]।

भवगान् का सतत स्मरण एवं कीर्तन[4] (गी० १०-९-१०)

१—मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धस्व विगतज्वरः। (गी० ३-३०)

२—ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः। (३-३१)

३—यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय ! तत्कुरुष्व मदर्पणम्। (९-२७)

४—मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च। (गी० १०-९)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् का अनुग्रह[1] (गी० १०-११) इन श्लोकों में यमनियमादि तथा शमदमादि समस्त साधनों का समावेश हो जाता है।

भगवान् श्रीराम ने भक्ति के साधनों का इस प्रकार वर्णन किया है—अध्यात्मरामायण (अरण्य, १०–१६) 'कथं रामाय मे दृष्टस्त्वं मनोवागगोचरः'।

१ सतां सङ्गतिः—सत्सङ्ग, १ मत्कथालापः, मेरे जन्म कर्मों की कथा का कीर्तन, ३ मद्गुणेरणम्—मेरे गुणों की चर्चा, ४ व्याख्यातृत्वम्—मद्वचसाम्—गीता उपनिषद् आदि मेरे वचनों की व्याख्या करनी, ५ आचार्योपासनम्—आचार्य की सेवा करना, ६ पुण्यशीलत्वं यमादि-नियमादि च—पवित्र स्वभाव, यमनियमादि का पालन तथा मेरी पूजा में नित्य निष्ठा, ७ मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गम्—मेरे मन की साङ्गोपाङ्ग उपासना करना, ८ मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः। वाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा—मेरे भक्तों की मेरी अधिका-अधिक पूजा करना, समस्त भूतों में मेरी भावना बाह्य पदार्थों में वैराग्य तथा शम दमादि साधन सम्पन्न होना। ६ तत्व विचारः—तत्व का विचार करना ये नौ मेरी भक्ति के साधन हैं। (अध्यात्म० १०–१२-२७)

'एवं नवविधा भक्ति साधनं यस्य कस्य वा' इन नवविध भक्तियों में-

१—तेषां सवतयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते। (गी० १०-१०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

१ परमप्रेमरूपा भक्ति,[1] परम अनुरागरूपा भक्ति,[2] आत्मानुसन्धान-रूपा भक्ति,[3] स्नेहपूर्वक भगवान् की ध्यानरूपा भक्तियों[4] के सभी लक्षण आ जाते हैं।

नारद भक्तिसूत्र में भक्ति के ये लक्षण कहे हैं—

१ भगवान् की पूजा में आनन्द, २ भगवान् की कथा श्रवण में प्रेम, ३ गोपियों की तरह भगवान् को समर्पण एवं भगवान् के विस्मरण में व्याकुलता। ये भक्ति के प्रधान लक्षण हैं—

१ पूजादिष्वनुराग इति पाराशर्यः (भ० ना० सू० १६)।

श्री विष्णोरर्चनं ये तु प्रकुर्वन्ति नरा भुवि।
ते यान्ति शाश्वतं विष्णोरानन्दं परमं पदम्। (विष्णु रहस्य)

२ कथादिष्विति गर्गः (भ० ना० सू० १७)

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्।
(श्रीमद्भागवत १। ५। २२)

३ यथा व्रजगोपिकानाम् (भ० ना० सू० २१)

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजाम्, स्वसाधुकृत्यं बिबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद् वःप्रतियातु साधुना।
(श्री म० भा० १०। ३२। २२)

---

१ सा अस्मिन् परमप्रेमरूपा (ना० भ० सू० २)
२ सा परानुशक्तिरीश्वरे (शां० सू०
३ स्व स्वरूपानुसन्धानम् (शंकर० विवे० चू० ३१)
४ स्नेहपूर्वमनुध्यानम् (रा० अ० जी० ७-१)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप—प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्योधन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ।[1]
(श्री० भा० १० । ४४ । १५)

भक्ति का फल—

भक्ति ही भगवान् के तत्वज्ञान का साधन है[2] तथा भक्ति से ही ज्ञान का परम फल है[3]। भक्ति का विशेष माहात्म्य यह है कि भगवान् भक्त के अधीन हो जाते हैं, जबकि योग, ज्ञान एवं तप से भगवान् वशीभूत नही होते हैं।

संसार के बन्धन से मुक्त होने की इच्छा वालों को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिये[1]।

---

१. जो गोपियाँ गौओं का दूध दुहते समय, धान आदि कूटते समय, दधि बिलोते समय, आंगन लीपते समय, बालकों को झुलाते समय; रोते हुए बच्चों को लोरी देते समय, घरों में छिड़काव करते तथा मार्जन करते समय, प्रेम पूर्वक मन से नेत्रों में अश्रुपूर्ण गद्गद् वाणी से श्रीकृष्ण के गुणानुवाद करती हैं, उस श्रीकृष्ण में चित्त निवेशित करने वाली गोपरमणियाँ धन्य हैं।

२ भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः ।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् (गीता० १८—५५)

३ स्वयं फलरुपत्ते ति ब्रह्मकुमाराः (ना० भ० सू० ३०)।
जो स्वतन्त्र अवलम्ब न आना। तेहि अधीन ग्यान विग्याना।

४ समोऽहं सर्वभूतेषु न मेद्वेश्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति च मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् (गी० ९२९)
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् (भा० ९-४-६८)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

'तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः' (ना० भा० सू० ३३)

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद।
राम भजन सोइ मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आवइ बरि आई॥

यहाँ पर श्री शङ्करानन्द जी कहते हैं—पूर्वोक्त श्लोक ३—४ के प्रमाण से अक्षरज्ञान तथा उनका फल (मोक्ष) केवल मेरे अनुग्रह से ही प्राप्त होता है, अतः मेरी उपासना ही करनी चाहिए[1]। श्रीकेशव भी ऐसा कहते हैं[2]।

हे पार्थ !–पातीति अर्थात् सबका रक्षक ईश्वर ही 'पा' है, यां अर्थयते–इति पार्थः, उसको चाहने वाला ही पार्थ कहलाता है। तुम पार्थ हो, इसलिये तुम्हारे लिये यह उपदेश युक्त है। इस भावना से 'पार्थ' इस संबोधन का अर्थ भी कई टीकाकारों ने किया है।

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा। (भाग० ९।४।६३)
केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा। (भाग० ११।१२।८)
तेषां ध्यायिनां न चिरात् शीघ्रमेवाहं समुद्धर्ता समुद्धरणकर्तायतस्ते
(ब० त० दी०)

मयि सगुणे विश्वरूपे आवेशितचेतसो भवन्ति, यतो व्यक्ताद्यसक्ता अपि शीघ्रमेव परं पदमारोढुमर्हा इति। नाव्यक्तेऽभिनिविष्टव्यम्। (नीलकण्ठः)

१ यस्मादक्षरज्ञानं तत्फलं च मत्प्रसादैकलभ्यं मन्युसादोऽपि मदुपास्त्यैकलभ्यस्तस्मान् मदुपासनं कुर्वित्याह—

२ एवं स्वनन्यभक्तानां मृत्युसंसारसागरान्मोचकः परमानन्ददाता चाहमेव।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धि निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्द्ध्वं न संशयः ।८।

तुम मेरे ही साकार रूप में मन को स्थापित करो तथा निश्चयात्मक बुद्धि को भी मेरे आधार पर ही स्थापित कर दो। ऐसा करने से अपने शरीर छोड़ने के अनन्तर भी निस्सन्देह मुझ ईश्वर रूप को प्राप्तकर मेरे में ही निवास करोगे।

वक्तव्य—इस तरह साकार उपासना की श्रेष्ठता को बताते हुए भगवान् वैसी ही उपासना का अर्जुन को उपदेश देते हैं—

आधत्स्व—आसमन्तात् स्थैर्येण सर्वत आकृष्य स्थापय (भा० टी०) सर्वत्र वृत्तेर्विषयं मामेव कुरु, न तु शब्दादिकमित्यर्थः (शंकरानन्दी) आधेहि मामुपास्वेति (रा० टी०) संस्कृत में 'आधान' शब्द का प्रयोग किसी वस्तु को बन्धक (गिर्बी-धरोहर) रूप में रखने के अर्थ में होता है। यहाँ इस शब्द के प्रयोग से यही अर्थ होता है कि अपने मन को मेरे पास बन्धक रूप में रख दो। अर्थात् जिस प्रकार गिर्बी रखी हुई वस्तु से उसका मालिक उससे दूसरा कोई काम नहीं ले सकता है, उसी प्रकार तुम भी अपने मन को मेरी उपासना में लगा दो अन्य कोई कार्य नहींकरो।

मन—संकल्पविकल्पात्मक है[1]—

---

१ ज्ञानायौगपद्यादेकं मनः। न युगपदनेकाक्रियोपलब्धेः।

इसी को न्यायासिद्धान्त मुक्तावलीकार ने भी 'साक्षात्कारे सुखादीनां करणं मन उच्यते' तथा अयौगपद्यांज्ज्ञानानां तस्याणुत्वमिहेष्यते। इन कारिकाओं से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन एक इन्द्रिय है और विषेश कर के बुद्धीन्द्रिय है।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति। (भगवद्गीता)

तथा प्रयत्नायौगपद्याज् ज्ञानयौगपद्याच्चैकं मनः (वै० सू० ३ २ ३) तदभावादणु मनः (वै० सू० ७-१-२३) से बहुत स्पष्ट किये हैं।

आयुर्वेद में—

लक्षणं मनसोज्ञानस्याभावो भाव एव च।
सति ह्यात्मेन्द्रियार्थानां सान्निकर्षे न वर्तते।
वैवृत्यान्मनसो ज्ञानं, सान्निध्यात्तच्च वर्तते।
तथा—अणुत्वमथ चैकत्वं द्वौगुणौ मनसः स्मृतौ॥
(च० शा० १-१६)

बहुत ही विशद वर्णन किया है।

वेदान्तपरिभाषा में भी—

मनो दशेन्द्रियाध्यक्षं हृत्पद्मगोलके स्थितम्।
तच्चान्तः करणं बाह्येष्वस्वातन्त्र्याद्द विनेन्द्रियैः। (२-१२)

योगवासिष्ठ में मन की व्याख्या इस प्रकार की है—

अनन्तस्याऽत्मतत्वस्य सर्वशक्तेर्महात्मनः।
सङ्कल्पशक्तिरचितं यद्रूपं तन्मनो विदुः।

अर्थात्—अनन्त सर्वशक्तिमान् महान् आत्मा की संकल्पशक्तिसे रचित रूप को मन कहते हैं।

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः।
सजीवति मनो यस्य मननेवोपजीवति।

वृक्ष भी जीवित रहते हैं, मृग (प्राणी) तथा पक्षी भी जीते हैं, (किन्तु इस जीवन में क्या लाभ है। सत्यतः उसी का जीवन सार्थक है, जिसका मन मनन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन अणु, एक और सर्वशरीरचर है, इसकी जहाँ जरूरत होती है, वहाँ पर तत्क्षण पहुँचकर इन्द्रियार्थों के ग्रहण करने में सहायता करता है।

इसका वर्णन न्यायदर्शन (३-२-५९-६०-६१-६२) में हुआ है—

करता हुआ (धर्म-अधर्म हित-अहित पथ-अपथ आदि में तथा तदनुसार निग्रह करता हुआ जीवित रहता है।

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
यच्चित्तस्तन्मयो मर्त्यो गुह्यमेतत् सनातनम्।

चित्त ही संसार है, अतः उसके गुणागुणों का संशोधन करना चाहिये। जैसा भी सात्विक–राजस–तामस मन होगा वैसा ही मन का व्यवहार होता है, यह सनातन गुह्य है।

संसारस्यास्य दुःखस्य सर्वोपद्रवदायिनः।
उपाय एक एवास्ति मनसः स्वस्य निग्रहः।

सम्पूर्ण प्रकार के उपद्रव देनेवाले इस संसार के दुःख का एक मात्र उपाय अपने मन का निग्रह ही है।

श्री हनुमान जी रामायण में कहते हैं—

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तते।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्।

शुभ तथा अशुभ इन सम्पूर्ण अवस्थाओं में समस्त इन्द्रियों का प्रेरक मन ही होता है तथा वह मेरा मन सुनिग्रहयुक्त है।

कठोपनिषद् में मन के महत्व का इस तरह वर्णन हुआ है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन का स्थान—हृदय में मन का स्थान होता है यह चरक सुश्रुतादि में स्पष्ट वर्णन है। हृदयमिती कृतवीर्यो बुद्धेर्मनश्च स्थानत्वात् (सुश्रुत)।

आत्मा को स्वामी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी तथा मन को प्रग्रह (लगाम) समझना चाहिए।

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सह।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।

निग्रहयुक्त मन से जो विज्ञानी होता है उसकी इन्द्रियाँ सदासर्वदा सारथि के उत्तम अश्व के समान वश में रहती हैं।

नारद पञ्चरात्र में—कहा है कि मनुष्यों के सब कर्मों का प्रधान कारण मन ही होता है। इसलिये मन के स्वरूपानुसार मनुष्य का भाषण होने से भाषण मात्र से ही मन का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है

अत्रैव विनियोगेऽपि चिन्ता कास्य परस्यचेत्। इसी को ('भा० वल्लभ) में भी स्पष्ट किया है कि—

यदिश्रीगोकुलाधीशः कृतः सर्वात्मना हृदि।
ततः किमपरैर्लाभैर्लौकिकैर्वैदिकैरपि।

यदि श्रीगोकुल नाथ श्रीकृष्ण को सर्वात्मना तुम ने हृदय में धारण कर लिया है तब लौकिक या वैदिक किसी अन्य वस्तु का लोभ क्यों? इसी को पुनः वहाँ ही स्पष्ट किया है कि—

अज्ञानादथवाज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम्।
कृष्णायनैः कृतैः प्राणैः तेषां का परिवेदना।

अज्ञान से अथवा ज्ञान से जिन्होंने आत्म निवेदन कर दिया है, उन्होंने तो श्रीकृष्ण को ही अपना प्राण बना लिया है, उनके लिए चिन्ता का कोई भी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु महर्षि भेड़ ने 'भेड़संहिता' में मन का स्थान शिर को कहा है - (उन्मादचिकित्सित)

शिरस्ताल्वन्तर्गतं सर्वेन्द्रियपरं मनः ।
तत्रस्थं तद्धि विषयानिन्द्रियाणाम् रसादिकान् ।
समीपस्थान् विजानाति त्रीन् भावांश्चनियच्छति ।
तन्मनः प्रभवश्चापि सर्वेन्द्रियमयं बलम् ।
कारणं सर्वबुद्धीनां चित्तं हृदय संस्थितम् ।
क्रियाणाञ्चेतरासांच चित्तं सर्वस्य कारणम् ।

कारण नहीं है । क्योंकि उनका योगक्षेम भगवान् करते ही हैं ।

सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति ।
अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्रइवद्विज: ।

(श्री० भा० ६।४।५३)

वैष्णव समुदाय में यह प्रसिद्ध उक्ति है—

जैसे किसी पशु को दूसरे को बेचदेने पर उसकी रक्षा की चिन्ता हम नहीं करते हैं, तद्वत् श्रीहरि को अपना शरीर समर्पित कर देने पर उसके रक्षा की चिन्ता व्यर्थ है—

चिन्तां कुर्यान्न रक्षार्थे विक्रीतस्य यथा पशोः ।
तथार्पयन् हरेर्देह विरमेदस्य रक्षणात् ।

आदि पुराण में भो—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनांहृदयेन च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पण्डितराज श्रीजगन्नाथ विषय मुग्ध मन को कैसे सावधान करते है—

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं बृन्दावने चारयन्
बृन्दं कोऽपि गवां नवाम्बुदनिभो बन्धुर्नकार्यस्त्वया ।
सौन्दर्यामृतयुद्गिरद्भिरभितः सम्मोह्यमन्दस्मितै-
रेष त्वां तव वल्लभांश्च विषयानाशु क्षयं नेष्यति ।

रे चित्त ! मैं तेरे हित के लिये कहता हूँ । वृन्दावन में गायों को चराते हुए नवीन श्यामघन के सदृश कान्तिमान् किसी को अपना बन्धु नहीं बनालेना । वह सौन्दर्य सुधा बरसाने वाली अपनी मन्द हास्य से तुमको मुग्ध करके तुम्हारे प्रिय विषयों को भी शीघ्र नष्ट कर डालेगा ।

इसी को देवर्षि नारद ने "लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्म-

भगवान् नारद जी से कहते हैं कि हे नारद जी । मैं न वैकुण्ठ में रहता हूं तथा न मैं योगियों के हृदय में वास करता हूं, आपसदृश मेरे भक्त जहां गाते हैं, वहा पर ठहरता हूं ।

मुक्तिकोपनिषद् में मनुनिग्रह युक्तियों के लिये कहा है कि—अध्यात्मविद्या का अभ्यास, सज्जनसगति, वासना परित्याग तथा प्राणायाम ये चार बलवान् युक्तियां चित्त की शुद्धि के लिये उपयुक्त होती हैं ।

अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसगतिरेव च ।
वासना संपरित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ।
एतास्तु युक्तयः प्रष्टाः सन्ति चित्तजये किल ।

अवधूत गीता में भी कहा है कि—धातुनिर्मित शरीर चित्ताधीन होता है और चित्त (स्वास्थ्य) का नाश हो जाने पर धातुनिर्मित शरीर का भी नाश हो जाता है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लोकवेदत्वात् । अर्थात् भक्त को लौकिक हानि की चिन्ता नहीं करनी चाहिये, इस सूत्र में कहा है। इसी को श्रीमद्भागवत में श्री भगवान् श्रीउद्धवजी को उपदेश देते समय अन्तिम उपदेश में कहते हैं—

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा निवेशितात्मा विचिकीर्षितो मे ।
तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पतेवै ॥

(११।२९।३८)

मनुष्य जब समस्त कर्मों का परित्याग कर देता हैं, अर्थात् कर्म—कर्मफल और कर्त्तापन इन तीनों का त्याग कर देता है तथा मेरे में आत्मनिवेदन कर देता है, तब मुझे अत्यन्त प्रिय हो जाता है तब वह अमृतत्व को प्राप्त कर के मेरा स्वरूप ही बन जाता है।

आत्म निवेदन करने पर क्या स्थिति है, इसका वर्णन श्री बल्लभाचार्य जी महाराज के वाक्य में देखिये—

निवेदितात्मभिश्चिन्ता कार्या क्वापिं कदापि न ।
निवेदनञ्च स्मर्तव्यं सर्वदा तादृशैर्जनैः ।

जाता है। इसलिए सदैव चित्त को भगवद्भक्ति से सदाचारों से सुरक्षित रखना चाहिये, क्योंकि मन की स्थापना से सभी शरीरस्थ धातुऐं स्वस्थ होती हैं—

चित्तायत्तं धातुबद्धं नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम् ।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धातवः सम्भवन्ति ।

अमृतबिन्दूनिषद् में कहा है कि—मनुष्यों के बन्धमोक्ष के लिये मन ही कारण है, बन्ध के लिए विषयासक्त और मोक्ष के लिए अनासक्त मन कारण होता है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासंगि मोक्षे निर्विषयं मनः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जिन्होंने भगवान् को आत्मनिवेदन कर दिया है, उनको कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, ऐसे लोगों को तो अपने निवेदन का ही स्मरण करना चाहिए। क्योंकि भगवान् का सम्बन्ध तो सभी से है, पृथक-पृथक प्राणियों से ही नहीं है, ऐसी स्थिति में यदि भगवान् अपनी एक के पास की वस्तु यदि अन्य के पास भेज देते हैं तो इसमें चिन्ता की क्या बात है।

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः।

जिस तरह ब्रजललनाओं ने पति, पुत्र भ्राता तथा सम्बन्धियों का उल्लंघन करके मेरे में ही मन को लगाया।[१] रावण को त्याग कर विभीषण ने अनन्यभाव से भगवान् रामचन्द्र की शरण ली। भरत का राज्य ऐश्वर्य, वैभव आदि का त्याग करके भगवान् राम की उपासना में मन लगाना, भक्त प्रह्लाद का पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके भगवान् श्रीकृष्ण में मन को स्थिर करना आदि।

मयि बुद्धि निवेशय—मन संकल्प करने वाला होता है तथा बुद्धि निश्चयात्मिका होती है। इसलिए एक मात्र संकल्प ही मेरे में नहीं करना चाहिए किन्तु निश्चयात्मक बुद्धि (ज्ञान) को मेरे आधार पर रख दो। यहाँ कार्य कारण भाव कहा गया है क्योंकि बुद्धि की वृत्ति को ही ज्ञान कहते हैं। मेरे में मन लगाने से ही मेरा ज्ञान प्राप्त कर

---

१ पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
नातिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितवयोषितः कस्त्यजेन्निशि।
(श्रीमद्भाग० १०-३१-१६)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकोगे। एकादश अध्याय के 'भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोर्जुन' इस श्लोक से भक्ति से ज्ञान और दर्शन प्राप्त हो सकता है ऐसा कहा है। इसको ही यहाँ पुनः स्पष्ट किया है।

'निवसिष्यसि' यह आर्ष प्रयोग है। व्याकरण की दृष्टि से 'निवत्स्यसि' प्रयोग होता है।

मदेकाश्रयस्य मदुपासनया चित्तशुद्धिस्तया ज्ञानं-तेन विना विदेहकैवल्यं च निरस्तप्रत्यूहेनैव सिद्धयतीत्यर्थः।
(शंकरानं०)

अर्थात् मेरी शरण लेने वाले की चितशुद्धि मेरी उपासना से हो जाती है तथा चित्त शुद्धि से ज्ञान तथा ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति विना प्रतिबन्ध के ही हो जाती है।

यहाँ 'मय्येव मन आधत्स्व' इसके लिये (अध्यात्मरामायण उ० ४-११) का प्रकरण स्मरणीय है।

●

ईश्वरोपासनानुकल्पचतुर्विधप्रकारेषु -अभ्यास-ज्ञान-ध्यान-फलत्यागेषु-उत्तरोत्तर-श्रेयस्त्वम्। तत्र ईश्वरज्ञानोपयोगिकर्मप्रवणत्वं ज्ञानम्। ईश्वरे परानुरक्तिहेतुकर्म-प्रवणत्वं ध्यानम्।

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय।९।

इस तरह मन तथा बुद्धि लगाना बहुत कठिन कार्य है, इस विचार से भगवान् कहते हैं कि—यदि इस तरह मन को स्थिर करने में अपने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को असमर्थ मानते हो तो हे धनञ्जय ! अभ्यास के योग से मुझे प्राप्त करने की इच्छा करो।

निष्कर्ष—

अभ्यास का अर्थ है—एक ही विषय का पुनः पुनः प्रतिपादन करना। इसके प्रमाण में श्रीमद्भागवत में अभेद-भक्ति के प्रकरण में अनेक उदाहरण मिलते हैं—क्योंकि श्रीमद्भागवत में विशेष आदर अभेद-भक्ति को ही दिया गया है, यथा—

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम्।
(भा० १–२–७)

यदङ्घ्र्यनुध्यान समाधि धौतयाऽ
धियानुपश्यन्ति हि तत्वमात्मनः।
वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचम्।
स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम्।
(भाग० २–४–२१)

इत्यादि (३।६।६) तथा ४।२०।६, ५–११–१४–१५, ५–१२–१–१०, ६–४–१३, ७–६–१६, ८–३–१८, ६–१६–२५, १०–१४–२७–२६, ११–२–४५, १२–५–६, १०–६६–२, १०–२६–३१, १०–३१–४, १०–४७–१७, २–४–१३–२=६–१७ आदि में वर्णन हुआ है।

राजा रहूगण, जड़भरत तथा कामी, भीरु, शत्रु, संसर्गी, स्नेही, भजनानन्दी, गोपी, कंस, शिशुपाल, यादव, पाण्डव, भक्तजन आदि भक्त एवं ज्ञानी तथा सभी का मुक्ति में अवसान है, क्योंकि इन्होंने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभ्यास का ही आश्रय लिया था। अभ्यास तो मनन का परम साधन है, इसीलिये भिन्न-भिन्न उपायों से अध्यात्मविद्या का अभ्यास करने के निमित्त ही इनके जीवन-चरित्रों से उपदेश मिलते हैं तथा विचित्र-विचित्र पात्रों की आख्यायिकाएँ वर्णित हुई हैं।

वक्तव्य—हे धनञ्जय! दिग्विजय के समय अर्जुन ने मनुष्यों का और देवों का बहुत-सा धन जीता था, इसलिये उसका नाम धनञ्जय हुआ।[1]

प्रथम और षष्ठ अध्याय में भी जब अर्जुन ने मन के रोकने को अति कठिन कार्य कहा था, तब भगवान् ने यही उत्तर दिया था कि अभ्यास से धीरे-धीरे मन को पकड़ना चाहिये।[2] पातञ्जलयोगसूत्र[3] में मन को रोकने का प्रयत्न ही अभ्यास शब्द से कहा गया है, यह प्रयत्न

---

१. दिग्विजये मानुषं दैवञ्च प्रभूतं धनम् अजयत् तेन असौ धनञ्जयः अर्जुनः (शंकरानन्दी) हे धनञ्जयेति दिग्विजये प्रसिद्धं महिमानं सूचयन् सोत्साहयति (म० सू०) श्रीमद्भागवत में धनञ्जय का वर्णन (प्र० ७–५।१९–३।१५–३३) हुआ है।

२. असंशयं महाबाहो! मनोदुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय! वैराग्येण च गृह्यते। (गी० ६–३५)

३. तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः (पा० यो० सू० १–१३) अभ्यासो नाम-चित्तभूमौ कस्यांचित् समानप्रत्ययावृत्तिः चित्तस्य (शंकराचार्यः) सतु दीर्घ-कालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः (समाधि पाद–१४)।

अभ्यासः—नित्यनैमित्तिकाविरुद्धकालेषुमवसोपास्यसंशीलनमभ्यासः (ब्रह्मानन्दः)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिरकाल तक करने से ही मन में श्रद्धा बढ़ती है तथा अवश्य सिद्धि होती है। इसी अभिप्राय से नित्य सनातन धर्म के ग्रन्थों में नित्य नैमित्तिक कर्मों में सन्ध्योपासना, भगवत्पूजा, साकारउपासना, मूर्तिपूजा आदि के अभ्यास का यही अभिप्राय है कि श्रवणकीर्तनादि द्वारा नवविध जो भक्ति का निर्देश दिया है, उसी का स्थित्यनुसार अभ्यास करें।

अध्यात्मविद्याधिगमः साधु संगम एव च।
वासनायाः परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम्।
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल।
सतीषु युक्तिष्वेतासु हठान्नियमयन्ति ये।
चेतस्ते दीपमुत्सृज्य विनिघ्नन्ति तमोऽञ्जनैः।

इति (ब्रह्मानन्दगिरि टीका २६६ पृ०)

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।

(श्री० भा० ६।५।२३)

अपने प्रभु के गुणानुवाद सुनना, स्वयं भी अपने मुख से उनका कथन करना, उन्हीं के गुणों का पुनः पुनः स्मरण करना, पाद सेवन, पूजा करना, प्रणाम करना, दास भाव प्रकट करना, आगे दृढ़ता के हो जाने पर अपने प्रभु से सख्यभाव स्थापित करना तथा अन्त में आत्मनिवेदन-सर्वरूपेण अपने को उनके आधीन कर देना, यह नवविध भक्ति है। इसी के पुनः पुनः आवर्तन को ही 'अभ्यास' कहते हैं। नित्य अभ्यास नहीं करने पर सद्रूप तथा चेतन रूप आत्मा की प्राप्ति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नहीं होती, इसीलिए जिज्ञासुओं को श्रेयः प्राप्ति के लिए दीर्घकाल-तक ध्यान करना चाहिए।[1] अभिप्राय यह है कि स्वाभाविक, अपार, अतिशय, सौन्दर्य. सौशील्य, सौहार्द, वात्सल्य, कारुण्य, माधुर्य, शौर्य, वीर्य, पराक्रम, सर्वज्ञत्व, सत्यकामत्व सत्यसङ्कल्पत्व, सर्वेश्वरत्व, और सर्वकारणत्व आदि असंख्य कल्याणमय गुणों के समुद्र तथा सम्पूर्ण अवगुणों के विरोधी युक्त परमेश्वर में अतिशय प्रेमयुक्त स्मृति के अभ्यास रूप योग से स्थिरतापूर्वक चित्त को स्थापित करके मुझको प्राप्त करने की इच्छा करे।

यह भक्ति दो प्रकार की होती है—१–अनुरागात्मिका फल भक्ति, २–साधन भक्ति। इन से फलभक्ति साधन के अनुष्ठान से ही सिद्ध होती है' यह नहीं कहना चाहिए क्योंकि फल में विद्याभाव है साधन भक्ति तो जो ऊपर निर्दिष्ट की है, वह नव प्रकार की है ही। इसीको अन्यत्र भी—

श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।
प्रत्यर्पिता विष्णोर्भक्तिश्चेन्नवलक्षणा। इति

---

१. नित्याभ्यासादृते प्राप्तिर्न भवेत्सच्चिदात्मनः।
तस्माद् ब्रह्म निदिध्यासेज्जिज्ञासुः श्रेयसे चिरम्।
(शंकर अपरोक्षानुभूति। १०१)

चित्तस्यैकालम्बने आभ्यन्तरे बाह्ये वा प्रतिमादौ सर्वतः समाहृत्य पुनः पुनः स्थापनमभ्यासः (भाष्योत्कर्षदीपिका—नी०क०च०। अभ्यासयोगेव—स्वाभाविकानवधिकातिशयसौन्दर्यसौशील्यसौहार्द वात्सल्य कारुण्य माधुर्य गाम्भीर्यौदार्य-शौर्यवीर्यपराक्रमसर्वज्ञत्वसत्यकामत्वसत्यसंकल्पत्वसकलकारण· त्वाद्यसंख्येयंकल्याण-गुणसागरे निखिलहेयप्रत्यनीके मयि निरतिशयप्रेमगर्भस्मृत्यभ्यासयोगेन (रा,भा०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रवणंनाम—भगवद्गुणकर्मनाम्नां यथा श्रोत्रेण ग्रहणं भवति तादृशोऽवस्थानादिव्यापारः। इस श्रवण कर्म में प्रवृत्ति होने से अनेक प्रकार के कर्मों की सिद्धि हो सकती है।

इसी आशय से कहा है कि—

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विश्वक्सेनकथासु यः।
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एवहि केवलम् ॥

नारदजी ने श्रीमद्भागवत ६।७१ में सनकादिकों से कहा है और ऐसे कर्मों के न करने पर श्रवणविमुखों की इस तरह निन्दाकी है।

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः।

जिसके कर्णपथ में भगवान् के नाम—गुणों ने कभी प्रवेश नहीं किया वह मनुष्यरूपी पशु कुत्ता, विष्ठाभोजीसूकर, ऊंट और गदहा की अपेक्षा भी अधिक निन्दनीय है।

श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः।
वैकुण्ठस्थो मनः कृष्णः श्रवणाद् यस्य लभ्यते।

हे तपोधनों! मैं भगवान् के गुणानुवादों के श्रवण को सब धर्मों से श्रेष्ठ मानता हूँ। क्योंकि भगवान् के गुणानुवाद सुनने से वैकुण्ठस्थित भगवान् की प्राप्ति हो जाती है।

केवल श्रवण भक्ति से भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। इसके लिए शास्त्रों में बहुत से प्रमाण मिलते हैं तथा इतिहास एवं पुराणों में बहुत से उदाहरण भी मिलते हैं। श्रीमद्भागवत (६।१०१) मेंलिखा है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

असारे संसारे विषयविषसंगाकुलधियः ।
क्षणार्थं क्षेमार्धं पिबत शुकगाथातुलसुधाम् ।
किमर्थं व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे,
परीक्षित् साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ।

हे विषय रूपविष के संसर्ग से व्याकुल बुद्धि वाले पुरुषो ! किसलिए कुत्सित वार्तारूप मार्ग में व्यर्थ घूम रहे हो ? इस अपार संसार में आत्मकल्याणार्थ कम से कम आधाक्षण भी तो शुकदेवजी के मुख से निकले हुए भगवान् के कथारूप अनुपम अमृत का पान करो। भगवान् के गुणश्रवण से मुक्ति हो जाती है। इस कथन के लिए राजा परीक्षित् ही प्रमाण है।

सत्पुरुषों के द्वारा प्राप्त केवल श्रवण भक्ति से भी मनुष्य परमपद को प्राप्त हो सकता है। भगवान् कृष्ण ने गीता (१३।१५) में स्वयं कहा है—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपिचातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।
इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार
वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि ।
अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन्मनुष्यो-
र्भक्तिपरां परमहंसगतौ लभेत ।

(श्री० भा० ११।३१,२८)

इस तरह भागवत आदि पुराण और अन्य शास्त्रों में वर्णित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् कृष्ण के सुन्दर अवतरणों के पराक्रमों की तथा परम मङ्गलमय बालचरितों को श्रवण करता हुआ मनुष्य परमहंसों की गति स्वरूप भगवान् की भक्ति को प्राप्त कर लेता है।

तथा— तान् शोच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे
हरेः कथायां विमुखानघेन।
क्षिणोति देवो निमिषस्तु तेषा-
मायुर्वृथावादगतिस्मृतीनाम्। इति।

भगवत्कथा श्रवण से पापक्षय होते हैं—

शृण्वतां स्वकथां कृष्ण: पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृदन्तस्थो ह्यभद्राणि विधुनोतिसुहृत्सताम्।
यो वा भगवतस्तस्य पुण्यश्लोकेऽत्रकर्मणः।
शुद्धिकामो न शृणुयाद् यशः कलिमलापहम्।

तथा—प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम्।
धुनाति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत्।
शुद्धि नृणां न तु तथेऽड्य ? दुराशयानाम्।
विद्याश्रुताध्ययनदानतपः क्रियाभिः।
सत्वात्मनामृषभ ! ते यशसि प्रवृद्ध-
सच्छ्रद्धया श्रवणसंभृतया तथा स्यात्।

अनुरागात्मक फलभक्ति के साधन के लिए उपदेश—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः
संगीयतेऽभीक्ष्णममंगलघ्नः ।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं
कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ।

भगवान् ही तत्वरूप से आविर्भूत होते हैं—

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकेशगन्धं
निघ्नन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां
नापैषि नाथ ! हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ।

गीयमानगुणनाम श्रवण के लिये—

शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदषंगः ।

नामश्रवण में—

न हि भगवन्न घटितमिदां त्वद् दर्शना-
न्नृणामखिलपापलयः ।

निष्कर्ष—

जातादरः कृष्णकथासु पुण्यैर्गीता,
इमाः केन च नृत्यतापि ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भाषानिबद्धाश्च युताश्च वाद्यैः,
शृण्वन् विमुक्तो भवतीति सिद्धम् ।

बाल्मीकीयरामायण में श्रीभरत हनूमान् जी से कहते हैं—

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् ।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य जीवनम् ।
(वा० रा० युद्ध० १२६।१)

एवमुक्तोऽथ हनुमान् भरतेन महात्मना ।
आचचक्षेऽथ रामस्य चरितं कृत्स्नशः क्रमात् ।
श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतो मारुतात्मजात् ।
(अध्या० युद्ध० १४।६५—६६)

महात्मा भरतजी के इस प्रकार कहने पर हनुमानजीने श्रीरामचन्द्र जी का क्रमशः सम्पूर्ण चरित्र सुना दिया । मारुति से यह चरित्र सुनकर श्रीभरतजी को अत्यन्त आनन्द हुआ ।

गोस्वामी श्री तुलसीदास—

भरत शत्रुहन दोनउ भाई । सहित पवनसुत उपवन जाई ।
बूझहिं बैठि राम गुन गाहा । कह हनुमान सुमति अवगाहा ।
सुनत विमलगुन अति सुख पावहिं ।
बहुरि बहुरि करिबिनय कहावहिं ।

श्री भरत—श्री रामचन्द्र के गुण, चरित्र, प्रेम और प्रभाव को सुन कर मुग्ध हो जाते थे ।

संकीर्तनं नाम—भगवद्गुणकर्मनाम्नां स्वयमुच्चारणम् ।

इसकी प्रवृत्ति से नाना प्रकार के शुभ कर्मों की सीद्धि होती है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥

जिस तरह सूर्य अन्धकार को और प्रचण्डवायु बादल को छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी तरह कीर्तित होने पर विख्यात प्रभाव वाले अनन्त भगवान् भी मनुष्यों के हृदय में प्रवेश करके उनके समस्त पापों को निस्सन्देह दूर कर देते हैं।

इतना ही नहीं इस कीर्तन भक्ति का प्रचारक तो भगवान् को सब से बढ़ कर प्रिय है। देखिये गीता १८-६६-६।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।

शुकदेव जी राजा परिक्षित से कहते हैं कि हे राजन्! दोष के खजाने कलियुग में एक ही महान् गुण है कि भगवान् कृष्ण के कीर्तन से भक्त आसक्ति रहित हो कर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। यथा—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान्गुणः ।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसंगः परं व्रजेत् ।

(श्रीमद्भागवत १२-३-५१)

हे राजन् परीक्षित! यों तो कलियुग दोषों का खजाना है, परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह गुण यही है कि कलियुग में केवल भगवान् श्रीकृष्ण का संकीर्तन मात्र से ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं और परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है।

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद् भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

भगवान् कहते हैं मैं न वैकुण्ठ में रहता हूं और न योगियों के हृदय-में किन्तु मेरे भक्त लोग जहाँ पर कीर्तन करते हैं मैं वहाँ ही रहता हूँ।

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितोयदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥

संकीर्तन से मनः शुद्धि भी होती है—

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथाविशुद्धत्यघवान् व्रतादिभि:।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्त मश्लोकगुणोपलम्भनम्। इति।

नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्।
न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो-
रजस्तमोभ्यां कलितं ततोऽन्यथा।

वामनपुराण में—

ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनाभं,
शंखाब्जचक्रशरचापगदासिहस्तम्।
पद्मालयावदनपंकजषट्पदाख्यं,
नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सङ्कीर्तन से अन्तःकरण शुद्धि से लेकर मुक्ति पर्यन्त तक प्राप्ति मुख से ही होती है। इसको मात्स्यपुराण के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं—

विष्णोर्नामैव पुंसः शमलमपनुदत्पुण्यमुत्पादयच्च,
ब्रह्मादिस्थानभोगाद् विरतिमथ गुरुश्रीपदद्वन्द्व भक्तिम्।
तत्वज्ञानश्च विष्णोरिह सृतिजननभ्रान्तिबीजं च दग्ध्वा,
सम्पूर्णानन्दबोधे महति च पुरुषे स्थापयित्वा निवृत्तिम्।

रामकृष्णादि शब्दों के प्रतिदिन अभ्यास करने से सगुण ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है—

रमन्ते योगिनो नित्यं नित्यानन्दे परात्मनि।
इति राम पदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते।इति।
कृषिर्भू वाचकः शब्दोऽन्यश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।

इस तरह निरन्तर ब्रह्म का ज्ञान कराते हुए अविद्या का नाश कर-देते हैं। वाराणसी में मृतपुरुष के लिए भगवान् महेश्वर से आदिष्ट यह राम शब्द है। वाराह पुराण में—

पेयं पेयं श्रवण पुटकैरामनामाभिधानं,
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकब्रह्मरूपम्।
जल्पञ्जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले,
वीथीं वीथीमटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी।

कलियुग में संकीर्तन का विशेष महत्व श्रीमद्भागवत एवं गरुड़-पुराण में हुआ है—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ।इति।

मार्कण्डेयपुराण में—
भिन्न भिन्न कार्यविशेष की सिद्धि के लिये भिन्न-भिन्न नामों के सङ्कीर्तन का वर्णन हेमाद्रि में भी है—

कूर्मं वराहं मात्स्यं वा जलसन्तरणे स्मरेत् ।
भ्राजिष्णुमग्निजनने जयेन्नाम त्वतन्द्रितः ॥

सर्वाणि नामानि हि तस्य राजन्-
सर्वार्थसिद्ध्यातु भवन्ति पुंसः ।
तस्माद् यथेष्टं खलु देवनाम
सर्वेषु कार्येषु जपेतु भक्त्या ।

यथा—क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते।
पद्मपुराण में—

कीर्तनादेव कृष्णस्य विष्णोरमिततेजसः ।
दुरितानि विलीयन्ते तमांसीव विनोदये । १ ।
नान्यत्पश्यामि जन्तूनां विहाय हरिकीर्तनम् ।
सर्वपापप्रशमनं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तम । २ ।

इसका अर्थ यह है कि—अपरिमेय प्रभावशाली श्रीकृष्ण या विष्णु के नाम कीर्तन से मनुष्य के सब पाप दूर होते हैं। जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार दूर हो जाता है। हे द्विजोत्तम[1] मनुष्य मात्र का आनन्द-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दायक—सम्पूर्णं पापों का नाशक हरिकीर्तन को छोड़कर कलियुग में दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है। अतएव नाम की महिमा विचित्र है। नाम कीर्तन का महत्व श्रीमद्भागवत में—

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या,
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यतिलोकबाह्यः।

ऋषभनन्दनकवि राजा जनक से कहते हैं कि, जो मनुष्य हरि के नाम कीर्तन को अपने सम्पूर्ण जीवन का प्रधान उद्देश्य बना लेता है उसके हृदय में अनुराग उत्पन्न होता है, वह हृदय द्रवीभूत होकर कभी हँसता है, कभी रोता है, कभी गाता है और कभी नाचता है, उसको बाह्य ज्ञान नहीं रहता। वह अपने प्रभु के प्रेम में पागल रहता है। श्रीगौराङ्गमहाप्रभु ने भी श्रीकृष्ण नाम की महिमा कही है—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणम्।
श्रेयः कैरवचन्द्रिका वितरणं विद्यावधूजीवनम्।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनम्।
सर्वात्मस्वपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्।

श्रीकृष्ण कीर्तन से चित्त रूपी दर्पण निर्मल हो जाता है। अर्थात् चित्त के समस्त कलंक दूर हो जाते हैं और विषय वासनाओं की महा-दावाग्नि के संताप को पुण्य कीर्तन शीतल कर देता है। जिस तरह चन्द्र के उदय से कुमुदिनी का पुष्प विकसित हो जाता है तद्वत् कृष्ण-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कीर्तन से आत्मा का पुष्प विकसित होता है। हरिकीर्तन से भक्ति विद्या रूप विधु का उदय हो जाता है। यह आनन्द समुद्र का बढ़ाने वाला है। प्रत्येक पद में पूर्णता का स्वाद देने वाला है। समस्त जगत की आत्मा को नाम प्रेम में डुबाने वाला श्रीकृष्ण कीर्तन सर्वोत्कर्ष से विराजता है।

संसार सागर से पार करने के लिये यह कीर्तन ही नौका रूप है। यथा—तरणिरि व तिमिरजलधेर्जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम।

प्रभात खंड में सूत जी का वचन—

मधुरमधुरमेतन्मंगलं मंगलानाम्
सकलनिगमबल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा,
भृगुवर ! नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम।

हे भृगुवर ! श्री कृष्ण का नाम, सकल निगमलताओं का सत्फल, चैतन्य रूप मंगलों का मङ्गल और मधुर से भी मधुर है। श्रद्धा से गान करने वालों को तो संसार से तारता ही है। चमत्कार यह है कि खेल से भी (क्या होता है कृष्ण नाम से दो अक्षर ही तो हैं) गान करने से भी संसार से तार देता है। यह भी नहीं किन्तु 'सकृदपि' एक वार गान करने से ही हरि नाम मधुर से भी मधुर है। यह मधुरता जिनको मिली है, जिनको इसका स्वाद मालूम है, वे ही इसका गान कर सकते हैं।

सङ्कीर्तन का महत्व—श्रीमद्भागवत, पाद्म, वैष्णव, बृहन्नारदीय, आग्नेयपुराण, ब्रह्मवैवर्त, वाराह, कौर्म, मात्स्य, गारुड, ब्रह्माण्ड, बृह-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न्नारसिंह-आदित्यपुराण, वायुपुराण, वन्दिपुराण, हरिवंश, प्रभास-पुराण, इतिहासोत्तम, भविष्योत्तरपुराण आदि में वर्णन हुआ है।

यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव तु निष्कृतम् ।
नाम व्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषयामतिः ।[1]

(श्री० भा० स्क० ६ अ० श्लो, १०)

नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ।

(श्री० भा० स्क० ६ अ० ३ श्लो० २३ ।

प्रिय दूतो ! भगवान के नामोच्चारण की महिमा तो देखो, अजा-मिल जैसा पापी भी एकबार नामोच्चारण करने मात्र से मृत्युपाश से छुटकारा पा गया।

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्मात्मकानि वै ।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ।।

(विष्णु पुराण)

ब्रह्मसंहिता—

१—चाहे जैसा और जितना बड़ा पापी हो और सभी के लिए यही इतना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है कि भगवान् के नामों का उच्चारण किया जाय; क्योंकि भगवन्नामों के उच्चारण से मनुष्य की बुद्धि भगवान् के गुण, लीला और स्वरूप में रम जाती है और स्वयं भगवान् की उसके प्रति आत्मीय बुद्धि हो जाती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यस्मिन् न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने,
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः ।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते ॥

संकीर्त्तन का वर्णन श्री नारदजी ने भी कहा है—

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान् ।

अर्थात्—कीर्तित होने पर भगवान् शीघ्र ही प्रकट होते हैं और भक्तों को अपना अनुभव कराते हैं। नामकीर्तन प्रारम्भ से ही काम कराने से अधिक महत्व रखता है। कवीश्वर पण्डितराज श्रीजगन्नाथ जी कहते हैं—

अन्यच्च—

गच्छन् तिष्ठन् स्वपन् वापि पिबन् भुञ्जन् हसंस्तथा ।
कृष्ण कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात् ।

भगवन्नामकौमुद्याम्—

आकृष्टिः कृतचेतसां सुमहतामुच्चाटनं चांहसां
याचाण्डालममूकलोकसुलभं वश्यञ्च मुक्तिश्रियः ।
नो दीक्षां न च दक्षिणां न च पुरश्चर्यां मनागीक्षिते,
मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति श्रीरामनामात्मकः ।

निष्कर्ष—

विश्वासभक्त्यर्थधियामभावे कदापि कुत्रापि कथञ्चनापि ।
उक्तं सकृन्नाम हरेर्हरीति ध्वंसं प्रकुर्यादखिलाघराशेः ॥

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कृष्णेति रामेति शिवेति शब्दान् विश्वासयुक्तस्तु सदाभ्यसेद्यः।
लब्ध्वा परां भक्तिमथ प्रबोधं मुक्तः स भूयादिति सिद्धमन्त्र ॥

भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्व और श्रद्धापूर्वक नामोच्चारण करते-करते शरीर में रोमाञ्च, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदय की प्रफुल्लता, मुग्धता का होना कीर्तन भक्ति का स्वरूप है।

भरत जी में ये लक्षण मिलते हैं—

दृष्ट्वा भरतमासीनं सानुजं सह मन्त्रिभिः ।
चीराम्बरं घनश्यामं जटामुकुटधारिणम् ।
राममेवानुशोचन्तं रामरामेतिवादिनम् ।
ननाम शिरसाभूमौ गुहोऽहमिति चाब्रवीत् ।

(अध्या० अयो० ८।२०-२१)

उसने देखा कि मेघश्याम भरत चीर वस्त्र और जटा जूट धारण किए छोटे भाई तथा मन्त्रियों के साथ बैठे हैं। वे राम ही का स्मरण कर रहे हैं और 'राम नाम का ही जप कर रहे हैं। यह देखकर उसने पृथ्वीपर शिर रखकर भरत जी को प्रणाम किया और बोला 'मैं गुह हूँ'।

श्री गोस्वामीजी—

पुलक गात हिय सिय रघुबीरू ।
सुनहि नाम जप लोचन नीरू ।

स्मरणम्—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तत्र स्मरणं नाम—भगवन्नामरूपादीनामनुसन्धानध्यानापरपर्यायो मानसो व्यापारविशेषः ।

जैसा पद्मपुराण में कहा है—

स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् ।
सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किंकराः । इति ।

स्मरण से अत्यन्त चित्त की शुद्धि होती है--

विद्यातपः प्राणनिरोधमैत्री तीर्थाभिषेकव्रतदानजप्यैः ।
नात्यन्तशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ।।
(श्री० भा० स्क० १२, ३, श्लो० ४८)

परीक्षित् ! विद्या, तपस्या, प्राणायाम, समस्त प्राणियों के प्रति मित्रभाव, तीर्थस्नान, व्रत, दान और जप आदि किसी भी साधन से मनुष्य के अन्तःकरण की वैसी वास्तविक शुद्धि नहीं होती, जैसी शुद्धि भगवान पुरुषोत्तम के हृदय में विराजमान हो जाने पर होती है ।

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि च शं तनोति ।
सत्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानञ्च विज्ञानविरागयुक्तम् ।
(श्री० भा० स्वा० १२, अ० श्लो० ५४)

भगवान् के चरण कमलों का प्रतिदिन स्मरण करने से अमंगल का नाश हो जाता है और शान्ति, सत्वबुद्धि, परमात्मभक्ति, विज्ञान तथा विरागयुक्तज्ञान की वृद्धि हुआ करती है ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं। (८।१४)

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याऽहं सुलभः पार्थ ! नित्ययुक्तस्य योगिनः ।।

अनन्यचित्त होकर जो सदैव मेरा स्मरण करते हैं, उस नित्ययुक्त योगी के लिए मैं बहूत सुलभ हो जाता हूँ।

शृण्वनूगृणन् स्मरयंश्च चिन्तयन् इत्यादि ।

(श्री० भा० १०।२।३७)

श्रीमद्भागवते—

सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्निवेशिते तद्गुणराशि यैरिह ।
न ते यमं पातभृतश्च तद् भटान्,
स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ।

(श्री० भा० स्क० ६ अ० १ श्लो० १९)

जिन्होंने अपनेभगवद्गुणानुरागी मनं मधुकर को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द-मकरन्द का एक बार पान करा दिया, उन्होंने सारे प्रायश्चित्त कर लिए। वे स्वप्न में भी यमराज और उनके पाशधारी दूतों को नहीं देखते। फिर नरक की तो बात ही क्या है।

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारम्
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्र : शद्गीतकीर्तिः ।

(श्री० भा० स्क० १० अ०, २१ श्लो० ५)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(वे मन ही मन देखने लगीं कि) श्रीकृष्ण ग्वालवालों के साथ वृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं। उनके शिर पर मयूर पिच्छ है और कानों पर कनेर के पीले-पीले पुष्प; शरीर पर सुनहला पीताम्बर और गले में पाँच प्रकार के सुगन्धित पुष्पों की बनी बैजयन्ती माला है। रंग मंच पर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नटका सा क्या ही सुन्दर वेष है! बाँसुरी के छिद्रों को वे अपने अधरामृत से भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोक पावन कीर्ति का गान कर रहे हैं। इस प्रकार वैकुण्ठ से भी वह वृन्दावन धाम उनके चरणचिन्हों से और भी रमणीय बन गया है।

भरतस्तु सहामात्यैर्मातृभिर्गुरुणा सह।
अयोध्यामगमच्छीघ्रं राममेवानुचिन्तयन्।

(अध्या० अयो० ९।६९–७०)

भरतजी मन्त्रीगण- माताओं और वसिष्ठजी के साथ श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करते हुए शीघ्रता से अयोध्या को चले।

विष्णुसहस्रनाम में भी कहा है—

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे।

जिसके स्मरण मात्र से मनुष्य जन्मरूपी संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है, संसार को उपलब्ध होने वाले उस विष्णु के लिये नमस्कार है।

श्रीतुलसीदासजी—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुनि महीसुर गुरु भरत भुआलू ।
राम विरह सबु साजु बिहालू ।
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माही ।
सब चुपचाप चले मग जाही ।

प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं ।
स्फुरत्सटाकेशरजृम्भिताननम् ।
करालदंष्ट्रं करवालचञ्चल-
क्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटिमुखोज्वलम् ।

(श्री० भा० स्क० ७ अ० ८ श्लो० २०-२१)

तपाए हुए सोने के समान पीली-पीली भयानक आँखे थी। जंभाई लेने से गरदन के बाल इधर-उधर लहरा रहे थे। दाढ़ें बड़ी विकराल थीं। तलवार की तरह लपलपाती हुई, छुरे की धार के समान तीखी जीभ थी। टेढ़ी भौहों से उनका मुख और भी दारुण हो रहा था।

स्मरणप्रकार—

एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत्,
पादादि यावद्धसितं गदाभृतः ।
जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्,
परं परं शुद्ध्यति धीर्यथा यथा ।

(श्री० भा० स्क० २ अ० २ श्लो० १३)

भगवान् के चरणकमलों से लेकर उनके मुसकानयुक्त मुख-कमल-पर्यन्त समस्त अंकों की एक-एक करके बुद्धि के द्वारा धारणा करनी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चाहिये। जैसे-जैसे बुद्धिशुद्ध होती जायगी, वैसे-वैसे चित्त भी स्थिर होता जायगा, जब एक अङ्क का ध्यान ठीक-ठीक होने लगे, तब उसे छोड़कर दूसरे अङ्क का ध्यान करना चाहिए।

सकृत्स्मृतो योऽखिलपापहंता,
स्मृतो सकृद्यश्च विमुक्तिदाता।
विश्वोद्भवावस्थितिनाशकर्ता,
तुष्टः स भूयाद्यमुनाविहर्ता।

पादसेवन के प्रकार—

पादसेवनं नाम—भगवत्परिचर्या, चमरान्दोलनपर्वमहोत्सवाद्यनेक-रूपा। श्री भगवान् के चरणकमल की सेवा का नाम पादसेवन भक्ति है। सामान्यतः यह कर्तव्य रूप से मानी जाती है।

कोनु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम्।
न भजेत्सर्वतो मृत्युरुपास्यममरोत्तमैः।

(श्री० भा० ११।२।२)

राजन्! ऐसा कौन प्राणी है, जिसे इन्द्रियाँ तो प्राप्त हों और वह भगवान् के ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवताओं के भी उपास्य चरणकमलों की दिव्यगन्ध, मधुर मकरन्द-रस, अलौकिकरूपमाधुरी, सुकुमार स्पर्श और मंगलमयध्वनि का सेवन करना न चाहे? क्योंकि यह बेचारा प्राणी सब ओर से मृत्यु से ही घिरा हुआ है। भगवान् के पाद-सेवन से अन्तःकरण की शुद्धि होती है—

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनाम-
शेषजन्मोपचितं मलं धियः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती,
यथा पदांगुष्ठविनिःसृता सरित् ।
(श्री० भा० स्क० ४, अ० २१, श्लो० ३१)

जिस प्रकार भगवान् के पाद से निकली हुई भगवती जान्हवी प्रति क्षण संसार की मलीनता को दूर करती है, उसी प्रकार श्री भगवान् के चरण कमलों की सेवा द्वारा भी तपस्वियों के चित्त से जन्म-जन्मान्तर संचित मलिनता शीघ्र ही नष्ट हो जाया करती है और इस प्रकार से चित्त की मलिनता नष्ट होने पर भक्तों के चित्त में भगवद्-भाव का उदय होने लगता है।

तावद् भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं
शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं
यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयंप्रवृणीत लोकः ।
(श्री० भा० स्क० ३, अ० ६, श्लो० ६)

हे प्रभो! जब तक लोग आपके अभय चरण कमलों का सच्चे हृदय से आश्रय नहीं लेते तभी तक धन, घर, मित्र आदि के निमित्त से भय, शोक, स्पृहा, पराजय एवं महान् लोभ ये सब होते हैं और तभी तक सम्पूर्ण दुःखों का मूल यह 'मेरा है' ऐसी झूठी धारणा बनी रहती है। अर्थात् भगवान् के चरण की शरण में आने पर यह सब नष्ट हो जाते हैं।

पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति में हेतु—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं य इच्छेच्छ्रेयआत्मनः ।
एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ।
यावन्न चरणौ भ्रातुः पार्थिवव्यञ्जनान्वितौ ।
शिरसा प्रगृहीष्यामि न मे शान्तिर्भविष्यति ।
(वा० रा० अयो० ९८-९)

चरन रेनु रज अंखियन लाई ।
बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ।

तथा—हरषहिं निरखि पाद पद अंका ।
मानहुं पारसु पायउ रंका ।
रज सिर धरि-हिय नयनन्हि लावहिं ।
रघुवर मिलन सरिस सुख पावहिं ।
देखि भरत गति अकथ अतीवा ।
प्रेम मगन मृग खग जड जीवा ।

भगवान् राम के चरणचिन्ह, चरणरज और चरणपादुका के दर्शन से भरतजी को कितना आनन्द प्राप्त हुआ है और उनकी कैसी प्रेम तन्मय दशा हो जाती है, वह भगवान् शिव के शब्दों में सुनिये—

जहाँ भरतजी ने सब ओर बज्र, अंकुश कमल और ध्वजा आदि के चिन्हों से सुशोभित तथा पृथ्वी के लिए अति मङ्गलमय श्री रामचन्द्र के चरणारविन्द देखे, उन्हें देखकर भाई शत्रुघ्न के साथ वे उस चरणरज में लोटने लगे और मन ही मन कहने लगे—अहो ! मैं परम धन्य हूँ जो आज भगवान् श्रीरामचन्द्र के उन चरणारविन्दों के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चिन्हों से विभूषित भूमि को देख रहा हूँ, जिनके चरणरज को ब्रह्मादि देवता और श्रुतियाँ भी सदा खोजती हैं।

अहल्या भगवान् के चरणरज को पाकर कृतार्थ हो जाती है—

अहो कृतार्थास्मि जगन्निवास !
ते पादाब्ज संलग्नरजःकणादहम् ।
स्पृशामि यद्यद्भजशंकरादिभि-
र्विमृग्यते रन्धितमानसैः सदा ।

हे जगन्निवास ! आपके चरणकमलों में लगे हुए रजकणों का स्पर्श पाकर मैं कृतार्थ हो गई। अहो ! आपके जिन चरणारविन्दों का ब्रह्मा, शंकर, आदि सदा चित्त लगाकर अनुसन्धान किया करते हैं, आज मैं उन्हीं का स्पर्श कर रही हूँ। भगवान् के चरणों का आश्रय लेने से मनुष्य के सभी दोषों का नाश हो जाता है, उसकी सारी विपत्तियाँ टल जाती हैं और वह गोपद के समान संसार सागर से पार हो जाता है।

अध्यात्मरामायण में—

स तत्र वज्राङ्कुशवारिजाश्रित-
ध्वजादि चिन्हानि पदानि सर्वतः ।
ददर्श रामस्य भुवोऽतिमङ्गला-
न्यचेष्टयत्पादरजःसु सानुजः ।

अहो सुधन्योऽहममूनिरामपादारविन्दाङ्किकितभूतलानि ।
पश्यामि यत्पादरजो विमृग्यं ब्रह्मादिदेवैः श्रुतिभिश्च नित्यम् ।

(अयो० ६-२-२-३)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तथा—पादुके देहि राजेन्द्र राज्याय तव पूजिते ।
तयोः सेवां करोम्येव यावदागमनं तव ।

(अयो० ६-४६)

"हे राजेन्द्र ! आप मुझे राज्य शासन के लिए अपनी जगत्पूज्य चरण-पादुकाएँ दीजिए। जबतक आप लौटेंगे तब तक मैं उन्हीं की सेवा करता रहूँगा।

यमाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परंपदं पदंपदं यद्विपदो न तेषाम् ।

(श्री० अ० १०।१४।५१)

जिन्होंने सन्तों के द्वारा आश्रयणीय, पवित्र यशवाले, भगवान् के पदपल्लव रूपी जहाज का आश्रय लिया है। उनके लिए संसार सागर बछड़े के पैर के समान छोटा हो जाता है, उन्हें पद-पद में परमपद प्राप्त है, इसलिए कभी भी उनको विपत्तियों के दर्शन नहीं होते।

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके ।
त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ।।

(श्री० म० अ० १०।२।३०)

हे कमलनयन ! सन्त लोग सम्पूर्ण तत्व के धाम आप में समाधि के द्वारा अपना चित्त तल्लीन करके महात्माओं के द्वारा अनुभूत आप के चरणकमलों को जहाज बनाकर संसार सागर को गोवत्स पद के समान पार कर जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न नाकपृष्टं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धी रपुनर्भवं वा वाञ्छन्तियत्पादरजः प्रयत्नतः ।

श्री भा० १०-१६-३५

हे भगवन् ! आपके चरणधूलि की शरण ग्रहण करनेवाले भक्तजन न स्वर्ग, न चक्रवर्ती राज्य, न ब्रह्मा का पद, न सारी पृथ्वी का स्वामित्व और न योगसिद्धियां ही चाहते हैं, अधिक क्या कहा जाय वे मोक्षपद की भी कामना नहीं करते ।

तथा —भरतः पादुके न्यस्य शिरस्येव कृताञ्जलिः ।
शत्रुघ्नसहितो रामं पादचारेण निर्ययौ ।

(अध्या० युद्ध० १४।७५-७८)

श्री रघुनाथजी से मिलने के लिये भाई शत्रुघ्न सहित भरत जी शिर पर भगवान् की पादुकायें रखकर हाथ जोड़े हुए पैदल ही गये ।

अर्चनम् पूजा ।

यह अभ्युदय निश्रेयस कारक होती है । वैधी भक्ति के पञ्चम भक्ति का नाम अर्चन भक्ति है । मृत्तिकापाषाण आदि से स्थूल मूर्ति बनाकर, अथवा हृदय में मनोमयी मूर्ति की कल्पना कर की गई बाह्य और मानस पूजाका नाम अर्चन भक्ति है । भक्ति के साथ इस प्रकार पूजा करने से भगवत् प्रसन्नता होती है, जिससे हृदय में धीरे-धीरे भगवत् भाव का उदय होने लगता है । विष्णु रहस्य में लिखा है—

श्रीविष्णोरर्चनं येतु प्रकुर्वन्ति नरा भुवि ।
ते यान्ति शाश्वतं विष्णोरानन्दं परमं पदम् ।
गन्धमाल्यार्घनैवेद्यैः शालग्रामशिलार्चनम् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्ति परायणः ।
कल्पकोटिसहस्त्राणि रमते सन्निधौ हरेः । (लिङ्ग पुराण)

वृहन्नारदीय में शिवपूजा एवं विष्णुपूजा का विशेष वर्णन है—

शिवपूजापरो वापि विष्णुपूजापरोऽपि वा ।
यत्र तिष्ठति तत्रैव लक्ष्मीः सर्वाश्च देवताः । इति

भगवान् की पूजा में तुलसीमञ्जरी एवं पत्तों का समर्पण—

योऽर्चयेद्धरिपादाब्जं तुलसीकोमलैर्दलैः ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥ बृहन्नारदीय ।

तुलसी मञ्जरीभिर्यः कुर्यात्हरिहरार्चनम् ।
न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी भवेन्नरः ॥ हारीत ।

श्रीभगवान् के पूजन से मनुष्यों को स्वर्ग, मोक्ष, एवं विश्व की समस्त सिद्धियाँ मिल जाती है। भगवत् चरणकमलों की पूजा सभी प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति का मूल कारण है।

स्वर्गापवर्गयोः पुंसां रसायां भुवि सम्पदाम् ।
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् ।

(श्री भा० १०।८१ १९)

स्वर्ग, मोक्ष, पृथ्वी और रसातल की सम्पत्ति तथा समस्त योग-सिद्धियों की प्राप्ति का मूल उनके चरणों की पूजा ही है।

श्री गीता (१८।४८) में भी

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा समभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्री भगवान् के चरणकमलोंकी वन्दना का नाम वन्दन भक्ति है, जिसके द्वारा भक्त के हृदय में अहङ्कार का नाश और भगवद्भाव का उदय होता है।

श्री वाल्मीकि जी —

तत्र राजासनं दिव्यं व्यजनं छत्रमेव च।
भरतो मन्त्रिभिः सार्धकभ्यवर्तत राजवत्।
आसनं पूजयामास रामायाभिप्रणम्य च।
वालव्यजनमादाय न्यसीदत्सचिवासने।

(बा० रा० अयो० ९१-३८-३९)

श्री तुलसीदासजी —

नित पूजन प्रभुपांवरी प्रीति न हृदय समाति।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति।

वन्दनात्मक भक्ति —

हे पुरुषोत्तम मैं आप के उन चरण कमलों की वन्दना करता हूं, जो सर्वदा ध्यान करने योग्य हैं, तिरस्कार को नष्ट करने वाले हैं, समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं तथा तीर्थों के आधार है जिनको शिव और ब्रह्मा सिर से नमस्कार करते हैं। जो शरणागतों की रक्षा करने में प्रवीण हैं। जो सेवकों की विपत्ति के नाशक हैं, नमस्कार करने वालों के रक्षक एवं संसार सागर के पार करने के लिये जहाज हैं।

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः।
पपात चरणोपान्ते दण्डवद् रामकृष्णयोः।

(श्री, भा० १०।३८।१४)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अक्रूर प्रेम से विह्वल होकर शीघ्रता के साथ रथ से कूदकर भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण के चरणों के पास दण्ड के समान गिर पड़े।

एतावदुक्त्वा वचनं भीष्मस्तद्गतमानसः।
नम इत्येव कृष्णाय प्रणाममकरोत्तदा।
अभिगम्य तु योगेन भक्तिं भीष्मस्य माधवः।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

(श्रीभा० स्क० १०, अ १४ श्लो० ८)

इसलिए जो पुरुष क्षण-क्षण पर बड़ी उत्सुकता से आपकी कृपा का ही भलीभांति अनुभव करता रहता है और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ सुख या दुख प्राप्त होता है उसे निर्विकार मन से भोग लेता है, जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्गद्वाणी और पुलकित शरीर से अपने को आपके चरणों में समर्पित करता रहता है— इस प्रकार जीवन व्यतीत करने वाला पुरुष ठीक वैसे ही आपके परमपद का अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिता की सम्पत्ति का पुत्र।

त्रैलोक्य दर्शनं ज्ञानं दिव्यं दत्वा ययौ हरिः।

(भीष्मस्तवराज १००-१०८)

जिनका मन भगवान् में तन्मय हो चुका है, ऐसे भीष्म ने अनेक प्रकार से भगवान् की स्तुति करने के बाद 'नमः कृष्णाय' कहकर भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। बाद में भगवान् श्रीकृष्णयोगशक्ति द्वारा भीष्म की उत्तमभक्ति को समझ कर उनको त्रिलोकी को भगवत्स्वरूप से प्रत्यक्ष करने वाला दिव्यज्ञान देकर चले गये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न वासुदेवात्परमस्ति मंगलं, न वासुदेवात्परमस्ति पावनम् ।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं, तं वासुदेवं प्रणमन्न सीदति ।

वासुदेव भगवान् से अधिक और कोई मङ्गलमय नहीं है, वासुदेव से श्रेष्ठ अन्य कोई आराध्य देव नहीं है, उन वासुदेव को नमस्कार करने-वाला कभी दुखी नहीं होता ।

एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेतिजन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ।

भगवान् श्रीकृष्ण को किया हुआ एक भी प्रणाम दश अश्वमेध यज्ञों के अवभृथस्नान के बराबर पुण्यप्रद है। दश अश्वमेध करने वाले को तो फिर जन्म लेना पड़ता है, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण को प्रणाम करने वाले को फिर जन्म लेना नहीं पड़ता ।

श्रद्धा पूर्वक भगवान् को प्रणाम करने वाले की तो बात ही क्या है, किसी भी अवस्था में भगवान् को प्रणाम करने से सब पापों का नाश हो जाता है—

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्वा वा विवशोऽब्रुवन् ।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥

(श्री० भा० १२।१२। ४३)

सखा वचन सुनि विटप निहारी ।
उमगे भरत विलोचन वारी ।
करत प्रणाम चले दोउ भाई ।
कहत प्रीति सारद सकुचाई ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कहत सप्रेम नाइ महिमाथा।
भरत प्रणाम करत रघुनाथा।
सानुज भरत उमगि अनुरागा।
धरि सिर सिय पद पदम परागा।
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए।
सिर कर कमल परसि बैठाए।

दास्यात्मक भक्ति—

दास्यं-सर्वकर्मणां भगवत्यर्पणं-क्रियाद्वैतापरपर्यायम्।
यद् ब्रह्मणि परे साक्षात्सर्वकामसमर्पणम्।
मनोवाक्तनुभिः पार्थ ! क्रियाद्वैतं तदुच्यते।
श्री० भा० स्क० ७ अ० १५ श्लो० ६४)

युधिष्ठिर ! मन, वाणी और शरीर से होने वाले सब कर्म स्वयं परब्रह्म परमात्मा में ही हो रहे हैं, उसी में अध्यस्त हैं—इस भाव से समस्त कर्मों को समर्पित कर देना 'क्रियाद्वैत' है।

दास्यभाव में श्रीभगवान् का दास बन कर उनकी सेवा के अभ्यास द्वारा अहङ्कारनाश और भक्ति की प्राप्ति का साधन माना गया है—

अहं हरे ! तव पादैकमूल··· । (श्री० भा० ६।११।२४)

इसकी विधि इस तरह है—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा,
बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करोति तद्यत्सकलं परस्मै,
नारायणायेति समर्पयेत् तत् । श्री० भा० ११।२।३६

वह शरीर से, वाणी से, मन से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, ग्रहङ्कार से, ग्रनेक जन्मों ग्रथवा एक जन्म की ग्रादतों से स्वभावश जो जो करें, वह सब परमपुरुष भगवान नारायण के लिए ही है—इस भाव से उन्हें समर्पण कर दे। (यही सरल-से सरल, सीधा-सा भागवत धर्म है।)

माता कैकेयी के प्रति भरत जी के वचन—

निवर्तयित्वा रामं च तस्याहं दीप्ततेजसः।
दासभूतो भविष्यामि सुस्थितेनान्तरात्मना ॥
(वा० रा० ग्रयो० ७३।२७)

गच्छाम्यारण्यमद्य स्थिरमतिरखिलं दूरतोऽपास्य राज्यम् ।
रामं सीतासमेतं स्थितरुचिरमुखं नित्यमेवानुसेवे ।
(ग्रध्या० ७।११४)

ग्रतः ग्रव मैं निस्सन्देह शीघ्र ही सब राज-पाट छोड़कर वन को जाऊँगा ग्रौर मधुर मुस्कान से जिनका मुखारविन्द ग्रति शोभित हो रहा है, उन राम ग्रौर सीता की नित्य प्रति सेवा करूँगा।

श्री गोस्वामीजी—

सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना।
सुनहु नाथ प्रनतारति हरना।
करउँ कृपानिधि एक ढिठाई।
मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दास्य भक्ति के आचरण करने से भगवान् प्रसन्न होकर भक्त के अधीन हो जाते हैं—

किञ्चित्रमच्युत ! तवैतदशेषबन्धो ।
दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ।
(श्री० भा० स्क० ११, अ० २९, श्लो० ६)

प्रभो ! आप सबके हितैषी सुहृद हैं। आप अपने अनन्य शरणागत बलि आदि सेवकों के अधीन हो जायँ, यह आपके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं।

यस्य हासावलोकेन रासाह्वय-
क्रीडतोदासवद् गोपपत्न्योऽभवन् ।
यस्य भासाऽखिलं भासतेऽदोजगत्
तस्य दासा भवामो वयं सर्वदा ।

सख्यात्मक भक्ति—

सख्यं नाम—भगवान् के प्रभाव, तत्व, रहस्य और महिमा को समझ कर परम विश्वास पूर्वक मित्र भाव से उनकी रुचि के अनुसार बन जाना, उनमें अनन्य प्रेम करना और उनके गुण, रूप और लीला पर मुग्ध होकर नित्य निरन्तर प्रसन्न रहना सख्य भक्ति है। सख्य भाव में भगवान् के प्रति पुण्यमय मधुर प्रेम का विकास होने लगता है। सख्य भक्ति की प्राप्ति के लिये भगवान् के प्रेमी सखाओं का संग, सेवन, उनके जीवन-चरित्रों का अध्ययन और उनके तथा भगवान् के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

गुण, लीला और प्रभाव आदि का उनके प्रेमी भक्तों के द्वारा श्रवण करना चाहिये।

अहोभाग्य महोभाग्यं नन्दगोप व्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥
(श्री० भा० १०।१४।३२)

पुनः श्रीम० भा० (१०।८०।१६-२१) में—

सख्युः प्रियस्य विप्रर्षे रणसंगातिनिर्वृतः ।
प्रीतो व्यमुञ्चदब्बिन्दून् नेत्राभ्यां पुष्करेक्षणः ।
अथोपवेश्य पर्यङ्के स्वयं सख्युः समर्हणम् ।
उपहृत्यावनिज्यास्य पादौ पादावनेजनीः ।
अग्रहीच्छिरसा राजन् ! भगवांल्लोकपावनः ।
व्यलिम्पद् दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंकुमैः ।
यद् गोविन्देति चुक्रोश कृष्णा मां दूरवासिनी ।
ऋणमेतत् प्रवृद्धं मे हृदयान्नापसर्पति ।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
विष्णुर्भक्तकुटुम्बीति वदन्ति बिवुधाः सदा ।
तदेव पालयिष्यामि सज्जनो नानृतं वदेत् ।

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणाम्,
न किंकरो नायमृणी च राजन् ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वात्मना यः शरणं शरण्यम्,
गते मुकुन्दं परिहृत्य कर्तुम् ।
(श्री० भा० स्क० १, अ० ५. श्लो० ४१)

स्निग्धो धर्मरतो धीरः सततं सत्पथे रतः ।
प्रियः प्राणसमो वश्यो विधेयश्च सखा च मे ।
(वा० रा० अयो० ३१ १०)

पद्मपुराण—पाताल खण्ड २।२८ में—

यानादवततराशु विरहक्लिन्नमानसः ।
भ्रातर्भ्रातः पुनर्भ्रातर्भ्रातर्भ्रातर्वदन् मुहुः ।

श्री गोस्वामीजी—

कृपासिन्धु सनमानि सुबानी ।
बैठाए समीप गहि पानी ।

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्
भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ।
सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा
नात्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ।
(श्री० भा० स्क० १०, अ० ४८, श्लो० २६)

प्रभो ! आप प्रेमी भक्तों के परम प्रियतम, सत्यवक्ता, अकारण हितू और कृतज्ञ हैं— जरा-सी सेवा को भी मान लेते हैं। भला, ऐसा कौन बुद्धिमान पुरुष है जो आपको छोड़कर किसी दूसरे की शरण में जायगा ? आप अपने प्रेमी भक्त की समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हैं। यहाँ तक कि जिसकी कभी क्षति और वृद्धि नहीं होती - जो एक रस है, अपने उस आत्मा का भी आप दान कर देते हैं।

चेतः कुरु हरिसख्यं कृतमपि सकलं निवेदयामुष्मिन् ।
सम्प्रति मा भव मित्रं पुत्रकलत्रादिविषयाणाम् ।

आत्मनिवेदनात्मक भक्ति—

आत्मा देहः, तस्य निवेदनं भवगति समर्पणम् ।
यद् वा आत्मनः, आत्मीयस्य देहदारादेः ।

तथा च वचः श्रीमद्भागवते—

दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत्परस्मै निवेदनम् ।

इस भक्ति में भक्त की शारीरिक तथा मानसिक चेष्टाएँ भगवद् भावमयी हो जाती हैं। जिसके कारण भक्त के हृदय में भगवान् के प्रति अपूर्व राग का विकास हो जाता है।

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेव परायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्मसनातनम् । विष्णु० १३०।

श्री गीता में भी —

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ।

आत्म निवेदन भाव के साधन के समय भक्त की चेष्टायें कैसी होती हैं इसका सुन्दर उदाहरण श्री० भा० में—

सवै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मुकुन्दलिंगालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्ग संगमम्
घ्राणञ्च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्यां रसनातदर्पिते ।
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरोहृषीकेश पदाभिवन्दने
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रयारतिः।

आत्मनिवेदन भाव के उदय होने से साधक का अन्तःकरण भगवच्चरणारविन्द में, वचन भगवद्गुणगान में, हस्त उनके मन्दिरों के मार्जन में, कर्ण भगवद् विषयिणी मधुर कथाओं के श्रवण में, दृष्टि उनकी मूर्ति के दर्शन में, शरीर उनके भक्तों के अंग स्पर्श में, घ्राणेन्द्रिय भगवच्चरण कमलों के सुगन्ध आघ्राण में, रसना उनमें समर्पित तुलसी के रस ग्रहण में, चरण उनके तीर्थ क्षेत्रों के गमन में, मस्तक उनके चरणों की वन्दना में और इच्छायें विषय विलास में उन्मुख न होकर साधुजनों की तरह श्री भगवान् की सेवा में संलग्न हो जाती है। सर्वात्मना समर्पित होने से यह फलप्राप्ति होती है—

तदामृतत्वं प्रतिपद्यमानो मयात्मभूताय च कल्पते वै ।
मर्त्यो यदात्यक्तसमस्तकर्मा निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे।।

(श्री० भा० स्क० ११ अ० २९ श्लो० ३४)

जिस समय मनुष्य समस्त कर्मों का परित्याग करके मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय वह मेरा विशेष माननीय हो जाता है और मैं उसे उसके जीवत्व से छुड़ाकर अमृतस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति करा देता हूं और वह मुझसे मिलकर मेरा स्वरूप हो जाता है।

हा तात क्व गतोऽसित्वं त्यक्त्वा मां वृजिनार्णवे ।
असमर्प्यैव रामाय राज्ञे मां क्व गतोऽसि भोः ।

(अध्या० अय० ७।६६।६७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

"हा तात ! हा तात ! मुझे दुःख समुद्र में छोड़कर आप कहाँ चले गए । हाय ! महाराज राम को मुझे सौंपे बिना ही आप कहाँ चले गए ?"

भरत जी भरद्वाजजी से कहते हैं—

मम राज्येन किं स्वामिन् रामे तिष्ठति राजनि ।
किङ्करोऽहं मुनिश्रेष्ठ ! रामचन्द्रस्य शाश्वतः ।
अतोगत्वा मुनिश्रेष्ठ ! रामस्य चरणान्तिके ।
पतित्वा राज्यसंभारान् समर्प्यात्रैव राघवम् ।

× × ×

नेष्येऽयोध्यां रमानाथं दासः सेवेऽतिनीचवत् ।

(अध्या० अयो० ८।४६-५१)

हे स्वामिन् ! महाराज राम के रहते हुए मुझे राज्य से क्या प्रयोजन है ? हे मुनिश्रेष्ठ मैं तो सदा से ही श्री रामचन्द्र का दास हूँ । अतः हे मुनिनाथ ! मैं श्री रामचन्द्र जी के पास जाकर उनके चरण-कमलों में पड़कर यह सारी राजपाट की सामग्री उन्हें यहीं सौंप दूंगा । तथा वशिष्ठ आदि पुरजन और जनपदवासियों के साथ मिलकर उनका राज्याभिषेक कर अयोध्या ले जाऊँगा और अति तुच्छ दास के समान उन लक्ष्मीपति की सेवा करूँगा ।

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।
मदर्थमपि कर्माणि, कुर्वन् सिद्धिमवाप्स्यसि ।।

यदि तुम अभ्यास करने में भी असमर्थ हो तो मेरे से सम्बन्ध रखने वाले कर्मों में तत्पर हो जाओ । मेरे लिये कर्म करने से भी तुम सिद्धि प्राप्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर लोगे। वक्तव्य अभ्यास का अर्थ है नियमपूर्वक एवं सतत प्रतिदिन विहित कर्म करना, अतः नियमपूर्वक जो अभ्यास नहीं कर सकता उसके उद्धार के लिए क्या करना चाहिए इसका समाधान इस श्लोक से करते हैं। मत्कर्मपरमो भव[1]—

यदि इस तरह निरन्तर अभ्यास करने में शारीरिक, कौटुम्बिक, सामाजिक तथा विविध विघ्न वाधायें उत्पन्न हों तो अपने समस्त कर्मों को ईश्वर को समर्पण कर दो। मनुष्य कुछ न कुछ कर्म तो करता ही है, विना कर्म किये मनुष्य जीवित ही नहीं रह सकता। परमात्मा को कर्मों के समर्पण करने से ही कर्मों की विशुद्धि हो जाती है। साधारण कर्मों के करने की अपेक्षा परमआनन्दघनपरमात्मा के लिये कर्म करने पर अत्यन्त विशुद्ध विचारों के साथ ही कर्म होंगे। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है!

१—मत्कर्मपरमः—मदीयानि कर्माणि मन्दिरनिर्माणतुलसीपुष्पादि वाटिकाकरणमन्दिरमार्जनलेपनदीपप्रकाशनतुलसीपुष्पाहरणमन्मूर्तिस्नापनोद्वर्तनगन्धपुष्पदीप नैवेद्यार्पणप्रदक्षिणानमस्कारस्तुत्यादीनिश्रद्धाप्रीत्यति-शयेनतत्परोभव (व० टी०)

मत्प्रीत्यर्थानि यानि कर्माणि एकादश्युपवासव्रतचर्या नामसंकीर्तनादीनि तदनुष्ठानमेव परमं यस्य (श्रीधरी)।

तत्रापि यद्यशक्तोऽसि तदा मत्प्रीतिसाधनम्।
यत्कीर्तनं यच्छ्रवणं यदर्चेत्यादिकर्म यत्।
धर्मो भागवतः स स्यात्तस्मिन्नकरतो भव (स० टी०)
आहृत्य सर्वतो बाह्यादेकस्मिन्नवलम्बने।
चेतसः स्थापनं भूयो भूयोऽभ्यासः स उच्यते। (स० टी०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस क्रम से धीरे-धीरे उत्तम कर्म होने लगने से निकृष्ट भावनाएं दूर होती जायेंगीं तथा उनके छोड़ने में दृढ़तायें उत्पन्न होंगी एवं मानव अल्प समय में परमभक्त हो जायगा। इसलिए समस्त कर्मों को परमेश्वर में समर्पण करने से ही मानव पवित्रात्मा बन जाता है तथा उसके उद्धार का मार्ग भी प्रशस्त हो जाता है।

वस्तुतः यह मार्ग अत्यन्त सुगम भी है, इसमें जो भी कर्म होगा वही ईश्वरार्पण करा देता है। इसमें किसी भी नियमादि पालन की आवश्यकता नहीं है। अतः मानव की उन्नति के लिये इस मार्ग का अवलम्बन बहुत ही उत्तम साधन है।

यही बात गीता द्वितीयाध्याय ६०-६१ श्लोकों में "तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः" इस मत्पर शब्द से कही है। अर्थात् मुझे परमात्मा का परायण मानकर मेरे लिए कर्म किया करो। तुम्हारी इन्द्रियां जिन वस्तुओं की अभिलाषा करती हों, उन इन्द्रियों को अन्यत्र विषय ग्रहण करने का अवसर दीजिए किन्तु भगवत् प्रसादरूप से इन इन्द्रियों को विषयों का ग्रहण कराने पर संसार की तरफ प्रवृत्ति न होकर ये भगवान् वासुदेव को ही प्राप्तव्यवस्थान बनालेंगी।[1]

जैसा व्यासजी कहते हैं—

१—यस्तु विज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सह।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सह।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः। कठोपनिषद्।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धाना प्रायो बीजाय नेष्यते ।।
(श्रीमद्भागवतम्)

अर्थात् मुझे परमात्मा में जिसने अपनी बुद्धि का आवेश कर लिया है, उनकी कामनाएं नई-नई कामनाओं को उत्पन्न करने में नहीं लगती। यथा—धान का स्वभाव बीजरूप से नूतन वृक्ष उत्पन्न करना है। किन्तु वह भुंजा जाने पर अथवा उष्णजल में उबालने पर नूतन वृक्षोत्पत्ति करने की शक्ति नहीं रखता, तदनुसार भगवद्भावना से भुनने पर कामनाओं में कोई नई कामनाएँ उत्पन्न करने की शक्ति नहीं रह जाती है।

यह भक्ति मार्ग ही एक ऐसा मार्ग है—मानवता को नष्ट करने वाले घृणित विषयों से हटा कर भक्ति के भावों से शुद्ध करके मनुष्य का उद्धार कर देता है।

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ।११।

यदि इस प्रकार मेरे कर्म-मेरी पूजा की सामग्री आदि एकत्रित करने में भी असमर्थ हो तो जो कुछ भी करते हो उसके फल का त्याग कर दो, अर्थात् जो कर्म करते हो, उनको ही कर्मफल की इच्छा त्याग कर करो, उनके फलों में चित्त नहीं लगाते हुए मेरे साथ सम्बन्ध करने-वाले कर्मयोग का आश्रय प्राप्त होकर शनैः शनैः एकाग्रता प्राप्त करने में सफल हो जाओगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रीमदभागवत (७-१०-७-९) में कहते हैं—

कामानां हृद्यसरोहं भवतस्तु वृणेवरम् ।
विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ।
तदेव पुण्डरीकाक्ष भगवत्वाय कल्पते ।

श्रुति भी— यदा सर्वे विमुच्यन्ते कामायेऽस्य हृदि स्थिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।

(कठ० उप० ६।१४)

वक्तव्य—अर्थात् भक्त प्रह्लाद भगवान् नृसिंह से यही वरदान मांगता कि मेरे हृदय में किसी तरह कीं भी कामना उत्पन्न न हो। तथा जब मनुष्य के हृदय में रही हुई सम्पूर्ण कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब वह मरण रहित होकर ब्रह्म भावना को प्राप्त हो जाता है।

श्रीगीता के नवमाध्याय श्लोक २७ में—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।

इसके द्वारा त्रयोधर्मस्कन्धाः-यतोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो 'ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी, तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्व एते पुण्यश्लोका भवन्ति (छान्दो० १।२३।१)।

आश्रमों का वर्णन करते हुए प्रथम आश्रम गृहस्थाश्रम कहा है। इसमें-यज्ञ, अध्ययन तथा दान ये तीन प्रकार के धर्म होते हैं।[१]

१—चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठमुत्तमम् ।
आहुर्धर्मज्ञधर्मज्ञास्तं कथं त्यक्तुमर्हसि । (वा० रामा० २।१० ६।२२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैदिक संस्कृति में अत्यन्त प्राचीन काल से ही गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता प्रसिद्ध है। गृहस्थाश्रम ही शेष आश्रमों का भरण एवं पोषण करता है—जैसा मनु कहते हैं—

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज् ज्येष्ठाश्रमोगृही ।

महर्षि वसिष्ठ भी मनु का ही समर्थन करते हैं—

यथा नदीनदाः सर्वे समुद्रे यान्ति संस्थितिम् ।
एवमाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ।
यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः ।
एवं गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवन्ति भिक्षवः ।

महाभारत आदि पर्व २।३६० में भी—

अस्य काव्यस्य कवयो न समर्था विशेषणे ।
साधोरिव गृहस्थस्य शेषास्त्रय इवाश्रमाः ।

महाकवि कालिदास भी रघुवंश (५-१०) में गृहस्थाश्रम की प्रशस्ति में प्रस्तुत करते हैं कि सर्वोकारक्षम यह आश्रम है—

अपिप्रसन्नेन महर्षिणात्वं सम्यग्विनीयानुमतोगृहाय ।
कालोह्ययं संक्रमितुं द्वितीयसर्वोपकार क्षममाश्रमन्ते ।

भारतीय इतिहास पुराण काव्यों में गृहस्थों की बहुत चरित कथाएँ मिलती हैं, उन सभी से उन्हीं का सर्वोत्कृष्टत्व प्रत्यक्ष होता है। श्रीमद्-भागवतानुसार सन्यासी की तरह गृहस्थ भी निष्काम कर्म योगद्वारा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

परम पद को प्राप्त कर सकता है। यह भी सर्वश्रेष्ठ सिद्ध है कि उन गृहस्थों का गृहस्थधर्म जिनका शास्त्रों में वर्णन है, वह सन्यास धर्म से भी कठिन तर है।

जैसा भागवत का वचन है—

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं
कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम्।
तृष्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः
कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः। (७।६।४५)

वानप्रस्थ धर्म—

वृद्धावस्था में इन्द्रियों के शिथिल होने पर सभी के हृदय में स्वभावतः वैराग्य भावना हो जाती है। प्राचीन वातावरण में कुछ अद्‌भुत तत्व था जब कि बालों के पलित होने पर प्रव्रज्याकाल आ गया है, ऐसा अवगत होता था।[२]

गृहमेधियों की ऐसी परिस्थितिको परिलक्षितकरके बहुत सज्जन ब्रह्मचर्याश्रम को नहीं त्यागते हुए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को स्वीकार करते थे। कुछ महानुभाव गृहस्थ होकर भी यथाशीघ्र गृहस्थाश्रम का त्याग करके पूर्वकाल में असंख्य विद्वान् वानप्रस्थ होते थे।

गृहस्थाश्रम का वर्णन—श्रीमद्‌भागवत में इन प्रकरणों में हुआ है—तृ० १२-४२ स० १२।११।१४।२।२४।१५।१।११ द० ७०।४।१३ ए० १७।३८।५४ १८।४३ इत्यादि।

द्वितीय वानप्रस्थ आश्रम कहा है, इसमें तपश्चर्या ही मुख्य है।

१—पूर्वं राजर्षिवृत्याहि वनवासोऽभिधीयते।
प्रजां निक्षिप्य पुत्रेषु पुत्रवत्परिपालने। (वा० रा० २।२३।२६)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजाजन भी प्रव्रज्याग्रहण ही अपना कर्त्तव्य मानते थे। उस समय मुनिजनोचित सुविधाएं थीं। इसीलिए प्रव्रज्यापद्धति प्रकाशमयी होती थी।

प्राचीनयुग में बहुत ऐसे महाविद्यालय होते थे, उनमें केवल प्रव्राजितों का ही प्रवेश होता था। उन विद्यालयों में उच्चशिक्षा लाभ के लिए बहुत गृहस्थ भी वानप्रस्थी होते थे।

महाभारत में गृहस्थजीवन के यत्र तत्र भयङ्कर चित्र प्रदर्शित किये हैं। यथा कथामाध्यम से—मानव तो गृहस्थाश्रम में निवास करता हुआ व्याधियों से, वृद्धावस्था से, काल से, एवं कामनाओं से वशीभूत होकर सुख का अनुभव करता है। यहाँ बहुत ही आश्चर्य है।

(म० भा० स्त्री पर्व ५।६।६७ अध्याय)

तप[1] का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है—

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छेनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ।

(१०.१२६।३)

इस मन्त्र में तप को संवर्धन का साधन कहा है। यही विकास का मूल कारण है। तप के माहात्म्य का वर्णन अथर्ववेद में सुप्रतिष्ठित है।

१—बहाछत्तजातके ३३६, सेतकेतुजात के ३७७।

२—मखादेववजातके ६।

१—इसका विशद वर्णन तथा त्रिविध तपों के लक्षण महाभारत वनपर्व (२००,८०,१०७) तथा श्री गीताजी में (१७-१४-१४) में हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यथा—ब्रह्मचारी तपसोदतिष्ठत्। ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत (अथर्ववेद ११।५)

वैदिकसाहित्य में अन्यत्र भी—

तपोभिरेव देवानां देवत्वं सिद्धम्। (तैत्तिरीयब्राह्मण ३,१२,१३,१) प्रजापतिस्तु सहस्रवर्षं तपस्तप्त्वाऽत्मशुद्धि विधाय मृत्युपाशाद्विमुक्तः (शतपथब्राह्मण १०,४,८,१,३) तपसा यज्ञेन इव सिद्धिर्लभ्या (अथर्ववेद १२,१,३९) उपनिषद् युग में तप की प्रतिष्ठा परिवर्धित थी उस समय तप ही ब्रह्म था। (तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली २,५) तप का ज्ञानमय स्वरूप निश्चित है (मुण्डक १-१-९) तप से ही ब्रह्म का साक्षात्कार होना सम्भव है (मनुस्मृति ११,२३६,५ २९) रामायण अरण्यकाण्ड १४-१५-१६-५-४-४२ में वर्णन हुआ है।

कायेन्द्रिय सिद्धिक्षयात्तपस; इस योग सूत्र से परिभाषित तप का मनोभाव का निर्मल होना यह प्रथम लक्षण है।

तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व (तै० उ० ३-२-१) तप से ब्रह्म को जानने की इच्छा करो। 'तपः बाह्यान्तः करणसमाधानम्' (तै० उ० शां० भा०) मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्यैकाग्र्यं परमं तपः स ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते (शां० ५-२५०-४) 'सर्वमितत्तपो मूलम्' (शां ५-१६१) इत्यादि वचनों से तप का महत्व प्रतिपादित हुआ है।

वानप्रस्थाश्रम में पत्नी यातो पुत्रों के संरक्षण में घर पर रहती थी अथवा पति के साथ वनगमन करती थी। वानप्रस्थीगृहस्थ वन में संयम और त्याग का जीवन व्यतीत करते थे। 'तपो हि परमं श्रेयः सम्मोहमितरत्सुखम्। (७।८४।९)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस सिद्धान्तानुसार तपस्या के अन्तर्गत आत्म-संयम, आत्म-त्याग, नियताहार, सदाचार, सत्य तथा स्वाध्याय एवं, समाधि का अभ्यास करते थे। इनको वैखानस एवं वालखिल्य कहते हैं—

आयुर्वेद की चरकसंहिता में ऋषियों का वर्णन इस प्रकार है।

वैखानसा बालखिल्यास्तथा चान्ये महर्षयः।
ब्रह्मज्ञानस्य निधयो यमस्यनियमस्य च ॥

तपसस्तेजसा दीप्ता हूयमाना इवाग्नयः। (च० सू० १३) अर्थात् ये ऋषिगण तप के तेज से हूयमान अग्नि की तरह दीप्तिमान् थे।

तीसरा आश्रम यहाँ नैष्ठिक ब्रह्मचर्य अर्थात् जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी ही रहकर समय व्यतीत करना।

इन तीनों आश्रमों का अच्छी तरह पालन करने वाले उत्तम लोकों को प्राप्त करते हैं। जो चतुर्थ आश्रमी है, अर्थात् जो ब्रह्म में ही[1] अपना मन लगाते हैं, उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है। गृहस्थ पुरुष को यज्ञ तथा दान करते रहना चाहिये, ये धर्म गृहस्थ के लिये हैं। वानप्रस्थ का धर्म तप ने ले लिया।

---

१ सच्चिदानन्दरूपेऽस्मिन् पूर्णे ब्रह्मणि वीक्षिते।
स्वयमेवावजावाति नामरूपे शनैः शनैः।
तदभ्यासेन विद्यायां सुस्थितायामयं पुमान्।
जीवन्नेव भवेन्मुक्तो वपुरस्तु यथा तथा।
(पञ्चदशी—अद्वैतानन्दप्रकरण १३।८०-८२ श्लो०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस श्लोक से भी सरल अन्तिम भक्ति का उपाय इस कर्म समर्पण से ही हो जाता है।

निष्कर्ष—भगवान् एक मात्र भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं। इस विषय में स्वयं भगवान् के या भगवदनुग्रहीत महात्माओं के शतशः वचन हैं, जो भगवान् भक्तपराधीन का वर्णन करते हैं तथा इस पराधीनता से समता में भी वाधा नहीं आती हैं।

श्रीमद्‌भागवत में योग आदि अन्य उपायों द्वारा अपने को भक्ताधीन होने का प्रतिपेध करते हुए केवल भक्ति के द्वारा ही वश में होना स्वीकार करते हैं। यथा—

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः, साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् १ येषां गतिरहं परा।

ये दारागारपुत्राप्तप्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे।

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शिनः।
वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा।

(भक्तिहंस)

हे द्विज ? मैं विवश की तरह भक्तों के पराधीन हूँ। भक्तजन मेरे को अत्यन्त प्रिय हैं, अतः साधु भक्तों के द्वारा मेरा हृदय पकड़ा हुआ रहता है। जो मेरे को ही परम गति मानकर मेरी भक्ति में लगे हुए हैं,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐसे भक्तों के बिना मैं कभी भी रहना नहीं चाहता तथा आत्यन्तिकी लक्ष्मी को भी उन भक्तों के विना नहीं चाहता। जो अपने स्त्री, गृह, पुत्र, बान्धव तथा प्राणों को एवं दुर्लभ धन को परित्याग कर मेरी शरण में आ गये हैं, उनको छोड़ने का साहस मैं कैसे कर सकता हूं। जिन्होंने अपना हृदय सर्वथा मेरे साथ बाँध रक्खा है, जो साधु समदर्शी हैं, वे मुझे इस तरह वश में कर लेते हैं, जैसे श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्री अपने सत्पति को वश में कर लेती है। यहां 'सत्स्त्रियः सत्पति यथा' इस उदाहरण द्वारा निर्दोष पति-पत्नी के विशुद्ध प्रेम के उच्चभाव की प्रतिष्ठा दिखलाई है, इसी तरह निर्दोषपूर्ण भक्तियुक्त भक्त की भगवान् सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकते। अतः वे कहते हैं कि मैं सत्पति के समान उस प्रेम के वश में अवश्य हो जाता हूं।

इसलिए यदि लोकसेवा अथवा परोपकार के कार्य भी नहीं कर सकते हो तो परमात्मा के चिन्तनपूर्वक अपने पृथक् व्यक्तित्व के व्यष्टि-भावोंको समष्टिमें मिलाकर प्रयत्नपूर्वक कर्मोंके फलों का त्याग कर दो।

श्रीशङ्कराचार्य कहते हैं कि—पूर्वपद्यों में चित्तकी स्थिरता के क्रमिक उपाय बताये हैं तथा यह भी कहा गया है कि यदि वह नहीं कर सकते हो तो यही करो। इसका सरल अर्थ यही है कि पूर्व-पूर्व के अनुष्ठान में जो समर्थ नहीं है, उसी को आगे का उपाय बताया है। इन

ऊनाधिकमविज्ञातं पौर्वापर्यविवर्जितम्। यच्चावधानरहितं बुद्धेर्विस्खलितं च यत्। तत् सर्वं मम सर्वज्ञ भक्तस्यातंस्य दुर्मतेः। क्षन्तव्यं कृपया शंभो यतस्त्वं करुणापरः। अनेन स्तोत्रयोगेन तवात्मनं निवेदये। पुनर्निष्कारणमहं दुःखानां नैमि पात्रताम्। (अभिनवगुप्ताचार्यः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सबके अन्त में कर्मफल त्याग कहा है, अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकते हो तो फल की आशा छोड़कर कर्म करते रहो।

यदि कोई साधक अपने कर्म ईश्वरार्पण करने में असमर्थ है तो वह अपने कर्मों के फल अपने भोग के लिये अपने पास संग्रहीत करके रक्खे। अपने कर्मों के फलों को सर्वप्राणियों के हित के लिये त्याग दे। इस तरह कर्मफल त्यागने से भी मनुष्य का उद्धार हो सकता है। इसमें एक यह भी कारण है कि व्यक्तिगत भोग विलासादि की वृद्धि से मनुष्य गिरता है, उससे बचने के लिये ही कर्म फल का त्याग किया जाता है। इसके द्वारा भोगलालसा कम होने से दोषों की न्यूनता होती जायगी।

(श्रीशातवलेकर जी)

भगवान् ने अ० ४ श्लो० १४ में 'न कर्मफले स्पृहा' तथा श्लोक १९ में 'त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गम्' इन से यही स्पष्ट किया है—कि फल के विषय में आसक्त न होकर केवल कर्तव्यबुद्धि से ही कर्म करता हूँ, कर्म के फल पर मेरी लालसा नहीं है। मानव जीवन में आसक्ति से ही महान् दुःख होते हैं—

"कुरङ्ग-मातङ्ग-पतङ्ग भृङ्ग-मीनाहताः पञ्चभिरेव पञ्च" देखिये— हरिण, हाथी, पतङ्ग, भृङ्ग तथा मछली ये पांच क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पर आसक्त होने से नष्ट होते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण के जीवन में प्रारम्भ से अन्ततक फल भोग रहित कर्म ही दिखाई देते हैं। इसीलिये उनका पवित्रजीवन प्राणि-मात्र के लिये आदर्श है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ (१२)

विवेक पूर्वक अभ्यास की अपेक्षा ज्ञान अधिक श्रेयस्कर है तथा उस ज्ञान से भी ज्ञान पूर्वक ध्यान श्रेष्ठ है तथा उससे भी ज्ञान ध्यान पूर्वक कर्मों का फल छोड़ना श्रेष्ठ है। उस कर्म फल त्याग के कारण अविद्या सहित संसार की शांति (उपशम) अनन्तर (व्यवधान रहित) प्राप्त हो जाती है।

ज्ञानादुपास्ति रुत्कृष्टा कर्मोत्कृष्टमुपासनात् ।
इति यो वेद वेदान्तैः स एव पुरुषोत्तमः ।
(सूर्यगीता ४-७७)

वक्तव्य—अर्थात् ज्ञान से उपासना (ध्यान) श्रेष्ठ है, तथा उपासना से निष्काम कर्म श्रेष्ठ है, यह वेदान्ततत्व से जो जानता है, वह पुरुषों में उत्तम है।

अधिकं केवलाभ्यासाज्ज्ञानं तत्सहितं ततः।
ध्यानं ततश्चापरोक्षं ततः शान्तिर्भविष्यति ।
(सामवेदे–अनभिम्लानशाखा)

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा यस्य हृदिस्थिताः ।
अथमर्त्योऽमृतो भवति अत्र ब्रह्मसमश्नुते ।
(बृ. उ. ६।१४)

इस श्रुति में ज्ञानपूर्वक कामक्षय का विधान है। अर्थात्—ज्ञान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वक हृदय की समस्त कामनाओं का क्षय हो जाने से ही मनुष्य अमृत-ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।[1]

श्री रामानुजाचार्य के मतमें—फलाशा को छोड़ कर कर्म करते रहने से चित्त की शुद्धि होकर ध्यान में प्रवृत्ति होती है तथा ध्यान से ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञान से भगवान् का साक्षात्कार होता है। उससे ही परा भक्ति प्राप्त होती है।[2]

श्री नीलकण्ठ जी के मत में—श्रवण आदि के अभ्यास से ज्ञान तत्वनिश्चय श्रेष्ठ है, उस ध्यान का सदा अनुचिन्तन करना ही ध्यान है, वह इससे भी श्रेष्ठ है, उस ध्यान से भी कर्मफलाशाओं का परित्याग करना श्रेष्ठ है। कर्मफल का त्याग योगी ही कर सकता है। इसलिए यहाँ कर्मफलत्यागी को योगी के सदृश मान कर स्तुति की है।[3]

---

१. कामाश्च सर्वे श्रौतस्मार्तकर्मणां फलानि। तत्यागे च
विदुषो ज्ञाननिष्ठस्य अनन्तरा एव शान्तिः—इति। (शंकराचार्यः)

२. अनभिसंहितफलादनुष्ठितात्कर्मणोनन्तरमेव निरस्तपापतया मनसः शान्तिर्भविष्यति शान्तेन मनसात्मनो ध्यानं संपत्स्यते ध्यानाच्च तदापरोक्ष्यं तदापरोक्ष्यात् पराभक्तिरिति भक्तियोगाभ्यासशक्तस्य आत्मनिष्ठेव श्रेयसी, आत्मनिष्ठस्याप्यशान्तमनसो निष्ठा प्राप्तान्तर्गतात्मज्ञानानाभि संहितफलकर्म निष्ठैव श्रेयसीत्यर्थः। रामानुजाचार्यः।

३. श्रवणाद्यभ्यासातज्जं ज्ञानं तत्वनिश्चयात्मकं श्रेयः। ततोऽपि ज्ञातस्यार्थस्य साक्षात्कारार्थं ध्यानं श्रेयः। ततोऽपिकर्मफलत्यागः। योगी हि सर्वकर्मत्यागी 'प्रजहाति यदा कामान्' इति प्रोक्तः। अयमपि कर्मफलत्यागेन कामाञ्जहात्येवेत्ति तेन सम इति स्तूयते। (श्री नीलकण्ठः)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

स्व० श्री गिरिधर जी चतुर्वेदी के मत में—

ज्ञान ही निश्चय पूर्वक परम कल्याण का साधन है। यह अभ्यास से प्राप्त होता है। ज्ञान की अपेक्षा ध्यान। अर्थात् श्रवण कीर्तन आदि नवधा भक्ति विशेष है, अर्थात् यह सुकर है। इसका अभ्यास थोड़े परिश्रम से सब लोग कर सकते हैं। उस ध्यान की अपेक्षा भी जो जो कर्म सांसारिक स्वभावतः करते हैं, उन्हें फल की आशा छोड़ कर अर्पना कर्तव्य समझ कर करना और भी सुकर है। इस प्रकार फलाशा छोड़ने से क्रमशः ईश्वरोपासना और आगे अद्वैत ज्ञान भी सिद्ध हो जायेगा तथा परमशान्ति भी प्राप्त हो जायगी।

श्रीसातवलेकरजी के मत्त में—

ज्ञानमार्ग से ध्यान मार्ग सुगम है, ध्यान से अभ्यास करना सुगम है, अभ्यास से कर्मयोग सुगम है, उससे कर्मफलत्याग सुगम है। अपना फल सब प्राणियों के हितार्थ दान करने से सहज ही आत्मा की प्रसन्नता होती है। यही शान्तिसुख है। यदि कर्मफलत्याग न हो सके तो मान लेना चाहिये, ज्ञान, ध्यान, अभ्यास अथवा कर्मयोग कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता। इस दान भाव से ही सिद्धि मिलती है इसलिये 'कर्मफलत्याग' समस्त साधनों में सुगम और मुख्य साधन है।

ईश्वरप्रसादोपयोगिनो भक्तिभावनाप्रकाराः—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखः क्षमी। १३।

जो समस्त प्राणियों से द्वेष न करने वाला, उनके प्रति प्रीति रखने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वाला, करुणा से युक्त, ममता शून्य, अहंकारहीन, सुख दुःख में समान, क्षमावान्, ऐसा मेरा भक्त है, वह मुझे प्रिय है।

वक्तव्य–अद्वेष्टा–समस्त प्राणियों से द्वेष करने वाला न हो। मैत्रः–इतना नहीं सबके साथ मित्रता भी रखे, उनके दुखों को दूर करने वाला हो। योगदर्शन में कहा है कि—

'मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्' (योग० सू० १।३३) अर्थात् किसी मनुष्य को सुखी देखकर उस पर मैत्री की भावना करे, ऐसा समझने पर इर्ष्या न होगी। करुणः–किसी को दुखी देखकर उसपर करुणा की भावना करे, करुणा की भावना का यह अर्थ नहीं है कि उसके साथ सहानुभूति करना और यथाशक्ति उसके दुःख हटाने का प्रयत्न करना ही करुणा है। इसी तरह किसी को पुण्य करता हुआ देखकर मुदिता की भावना करे अर्थात् अपने चित्त में प्रसन्न हो। एवं किसी को पाप करता हुआ देखकर उसपर उपेक्षा की भावना करे–अर्थात् उससे द्वेष न करे। संसार में इस तरह मनुष्य किया करते हैं—ऐसी उपेक्षा की भावना मन में करे। इस तरह की भावनाओं से चित्त में प्रसन्नता होती रहती है। इनमें से मैत्री और करुणा इन दो भावनाओं को यहाँ भगवान् ने कुछ विस्तार से बताया है, अन्य भावनाऐं भी आगे आयेंगी।

यहां 'सर्वभूतानाम् अद्वेष्टा' इस पद से सम्पूर्ण प्राणियों से द्वेष न करने की आज्ञा है। जिसके मन में द्वेषभाव नहीं, वही भगवान् का भक्त है।

अद्वेष्टा—सर्वेषां भूतानामद्वेष्टा–न द्वेष्टा, न द्वेष कर्ता, द्वेषवर्जितः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सर्वत्रात्मबुद्धित्वात् सर्वप्रिय कर्ता। उदाहरणार्थं १—भक्त प्रह्लाद ने पिता के पापों की मुक्ति के लिए नृसिंह भगवान् से वरदान माँगा। (भा० ७·७·१७) २—भक्त अम्बरीष ने सुदर्शन के त्रास से दुःखी दुर्वासा ऋषि की रक्षा की (भ० ९-५-१०-१२) ३—बालक पुत्रों का बध करने-वाले अश्वत्मामा से द्रौपदी की क्षमा याचना (भ० १-४-४७)।

आदि असह्यदुःख देनेवाले, अनिष्ट करनेवाले, प्राणलेने वाले के प्रति द्वेष नहीं करना। ये ही भक्तों के अनेक दृष्टान्त हैं।

ये क्लेशादि मन के विकार हैं. किन्तु जो धर्ममार्ग के पथिक एवं भगवद् भक्त हैं, उनको इन मनोविकारों का प्रचण्ड आतप नहीं सता सकता है। योगदर्शनकार श्रीपतञ्जलि ने कहा है। यदि चित्त की प्रसन्नता चाहते हो तो किसी प्राणी का अभ्युदय देखकर उसके साथ ईर्ष्या करने के स्थान में उसको अपना मित्र समझो। किसी को दुःखी देख कर प्रसन्न न होओ। उस पर करुणा करो। पवित्र कार्य करते हुए पुरुषों को देखकर हर्ष-युक्त होओ। पापियों की यदि वे नहीं मानते हैं तो उपेक्षा करो, उनसे झगड़ा मतकरो, प्रत्युत उनको सुबुद्धि देने के हेतु परम पिता जगदीश्वर से प्रार्थना करो।

४—वन पर्व महाभारत में —

न पापे प्रतिपापः स्यात्त् साधुरेव सदा भवेत् ।(२०६-४४)

अर्थात्—अनिष्ट कर्ता के प्रति भी साधुभाव का वर्तन करना ज्ञानी का स्वभाव है।

५—सात दिवस में मृत्यु का शाप देने वाले ऋषिकुमार के कथना-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नुसार डंक मारने वाले तक्षक नाग के ऊपर समदृष्टि वाले परीक्षित ने द्वेष नहीं किया (अ० १२।५।१२)।

६—परन्तु तक्षक के डंक से मृत्युप्राप्त परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने पिता का वैर चुकाने की भावना से तक्षक तथा सर्पमात्र के नाश के लिए सर्पयज्ञ का आरम्भ किया था। (भा० १२।६।१५)

७. आयुर्वेद भी इसका समर्थन करता है—

'सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात्'
रागद्वेषहेतूनां हन्ता च। (चरक सू० ८।३६०)
उपकारप्रधानः स्यादपकारपरेऽप्यरौ। (वाग्भट सू० २)

मैत्रः—मित्रभावो मैत्री, मित्रतया च वर्तत इति मैत्रः (शङ्कराचार्यः। द्विषत्सु—उपकुर्वत्सु च सर्वभूतेषु मैत्रीं मतिं कुर्वन् मैत्रः (रा० भा०), मित्रभावो मैत्रीं, स्निग्धता, तद्वान्, सर्वेषु भूतेषु प्राणिषु मित्रभावेन वर्तमानः, सर्वेषां भूतानां प्राणिनां मैत्रम्।

करुण :—करुणा कृपा दुःखितेषु दया तद्वान् करुण; सर्वभूताभयप्रदः संन्यासीत्यर्थः। (शंकराचार्यः) दुःखदातारमपि करुणया न बाधयितुमीष्टे, अपितु त्रातुमेव इच्छति एतेन सर्वभूताभयप्रदः संन्यासी उक्तः (नी० कं०) करुणैव सर्वेषामानुकूल्ये वर्तते न तु गुणवृद्ध्या गुणस्यापिदोषवद्बाधकत्वात्। करुण इत्यत्र मत्वर्थेऽच्प्रत्ययः (शंकरानंदी)।

निर्ममः—स्त्री, पुत्र, गृह, सम्पत्ति आदि में ममता आदि न करे। अर्थात् ममत्व को छोड़ देना चाहिये। यह मेरा है, यह मुझे चाहिये,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह दूसरे का है, यह मेरा नहीं है, इस प्रकार के विचार को ममत्व कहते हैं। इस ममत्व के कारण ही सब द्वेष उत्पन्न होतेहैं। इस द्वेष के बढ़ने से मित्रता और करुणा नष्ट हो जातीहै। अर्थात् ममत्व द्वेष का हेतु है। इसलिये इसका परित्याग करना चाहिये। इस ममत्व भाव का न होना ही निर्मम है।[1]

निरहंकारः[2]—मैं सब कुछ करता हूँ, ऐसा अहंकार भी चित्त में न करे। अहंकार से ही दूसरे की निन्दा की जाती है। द्वेष, ममत्व तथा अहंकार का सम्बन्ध बहुत घनिष्ट है। अहंकार से ममत्व, ममत्व से दूसरे की निन्दा तथा निन्दा से द्वेष होता है। इस सम्बन्ध को देखकर अहंकार छोड़ने का प्रयत्न करना चाहिए।

समदुःखसुखः[3]—भाग्यवश जो दुःख या सुख आवें उनमें भी समान

---

१. निर्मम—देहेन्द्रियेषु तत्सम्बन्धिषु च ममताशून्यः। देहेऽपि ममेति प्रत्ययरहितः (म० सू०) परदेहवत् स्वदेहान्निर्गतो ममभावो यस्य स निर्ममः रागद्वेषहेतोर्ममतावन्धान्निर्मुक्त इत्यर्थः (शं० टी०)।

२. निर्गताहं प्रत्ययः (शंकराचार्यः) अहंकारो हि सर्वानर्थनिदानं स एव निर्गतो यस्मात् स निरहंकारः। (नी० कं०) अस्य कर्मणोऽहं कर्तेति निर्गताहं प्रत्ययः, कर्मसु कर्तृत्वबुद्धिरहित इत्यर्थः।

३. समदुःख सुखः—सुखं यथा शोककरं न भवति, तथा दुःखमपि, यथा च दुःखं हर्षकरं न भवति तथा सुखमपीत्येवं सुखदुःखयोः साम्यम्।

(अ० २-१५ श्लोके ब्रह्मानन्दगिरि:)

अयम्भावः—समे दुःखसुखे यस्य, स यथाकालं प्राप्तयोर्दुःखसुखयोरेकरसः, अनिष्टेष्टबुद्धिवर्जितः। समभावः-समः शत्रौ च मित्रे च, मानापमानयोः समः, शीतोष्णसुखदुःखसमः, तुल्यनिन्दास्तुतिः न हृष्यति न द्वेष्टि, न शोचति न कांक्षति। इत्यादि।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रहे। सर्वत्र समबुद्धि, समभाव, समदृष्टि रखनी चाहिए। सुख-दुःख, शीत-उष्ण, निन्दा-स्तुति, हर्ष-द्वेष, आशा-निराशा, मान-अपमान, शत्रु-मित्र इन दोनों के विषय में मन की समवृत्ति रखनी चाहिए। अर्थात् सुख और दुःख जिसके अन्तःकरण में राग, द्वेष उत्पन्न कर सकते हैं, अतः उसके लिये सुख और दुःख समान हैं।

क्षमी[1]—यदि कोई अपना अपकार भी करे तब भी उसमें सहनशील रहे, अर्थात् उसके अपकार की भावना मन में न करे। क्षमी के

---

१. क्षमी-क्षमावान् आक्रुष्टः अभिहतो वा अविक्रिय एव आस्ते (शंकरा०) आक्रोशताडनादिनाऽपि न विक्रियामापद्यते (म० सू०) सुखदुःखहेतुषु चित्तविकार रहितत्वात् क्षमावानित्यर्थः (व० टी०) तितिक्षुराध्यात्मिकादि दुःखानां संतापविलापराहित्येन सहनशील एव क्षमीत्यर्थः। 'वृक्ष इव तिष्ठेच्छिद्यमानो न कुप्येत न कम्पेत' इति श्रुतेः (शे० टी०) आक्रुष्टस्ताडितो वान्यैर्निर्विकारमनाः क्षमी (स० टी०) आक्रुष्टोऽपि ताडितोऽपि अविक्रिय एवास्त इत्यर्थः (भा० टी०) स्पर्शप्रभवयोरवर्जनीययोरपि तयो र्विकाररहितः (रा० भा०) दुष्टकृतावमानादिसहनशीलः (अ० टी०) क्षमी-क्षमावान् परिभवप्राप्तावपि स्वस्थचित्तः (नी० कं०) अपकारिणं शत्रु प्रत्यद्वेषबुद्धिः (अ० गुप्तः) निन्दास्तुत्यादिषु निर्विकार (ब्रह्मानन्दी) क्षमी-क्षमावान्, सहिष्णुः, समुद्रतुल्यगम्भीर इत्यर्थं। श्री भागवते क्षमागुणःतन्महिमाचेत्थम्—वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः। यथा लोक गुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात् पदम्। मयात्र रोचते लक्ष्मी ब्राह्मीसौरी यथा प्रभा। क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः (७, १५-३९-४)।

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः संतोष आर्जवम्।
शमोदमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम्॥ (प्र० १६।२६।२७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दो अर्थ होते हैं, १-क्षमाशील अपराधों को क्षमा करने वाला, २-कष्ट सहन करने में समर्थ। दोनों अर्थ यहाँ अपेक्षित हैं। सत्कर्म करने के समय होनेवाले कष्ट सहन करने का सामर्थ्यवान् ही उन्नति कर सकता है। तथा जो कठिन दण्ड देता हुआ शान्ति से कार्य करता है, वह भी आनन्द का अनुभव करता है। इसलिये उन्नतिशील पुरुष में ये दोनों ही गुण होने चाहिए। इसलिये किसी के द्वारा गाली देने पर या मारपीट करने पर भी जो विकार रहित ही रहता है। वह क्षमावान् है।

निष्कर्ष—श्री भगवान् के वाक्य हैं कि हे अर्जुन ! नारद, प्रह्लाद उद्धव आदि मेरे भक्त मेरे को जैसे प्रिय हैं, वैसा ब्रह्मा, शिव, बलदेव जी, श्री लक्ष्मी जी तथा मेरी आत्मा भी मुझे प्रिय नहीं, निरपेक्ष, सतत मेरा ही चिन्तन करने वाले, निर्वैर, रागद्वेष वर्जित तथा सर्वत्र समदृष्टि वाले मेरे भक्तों के 'अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः'[१] (भा० ११-१४-१५-१६-१७) अर्थात्—सर्वपरिग्रह रहित, अहंता-ममता रहित, मेरे में एकाग्रचित्त वाला, शान्त, प्राणीमात्र पर दया तथा प्रेम रखने वाला, निष्काम मेरा भक्त ही मुझे प्रिय है, उसके पीछे नित्य फिरता हुआ मैं उसके चरण रज से पवित्रता का अनुभव करता हूँ।

---

१. न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शंकरः।
न च संकर्षणो न श्रीर्नैवात्मा च यथा भवान्।
निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम्।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः।
निष्किञ्चना मय्यनुरक्तचेतसः शान्ता महान्तोऽखिल-जीववत्सलाः।
कामैरनालब्धधियोजुषन्ति यत्तन्नैरपेक्ष्यं न विदुः सुखं मम।
(भा० ११-१४-१५-१६-१७)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।१४।

निरन्तर सन्तुष्ट, एकाग्रचित्त, शरीर और इन्द्रियों को वश में रखने वाला, दृढनिश्चयी तथा मेरे में मन और बुद्धि को समर्पित किया हुआ है, ऐसा जो मेरा भक्त है, वह मेरे को प्रिय है।

वक्तव्य—देहस्थिति के कारण रूप पदार्थों की लाभ-हानि में जिसके 'जो कुछ होता है वही ठीक है' ऐसा 'अलम्' भाव हो गया है। इस प्रकार जो गुण युक्त वस्तु के लाभ में और उसकी हानि में सन्तुष्ट रहता है (शंकराचार्य)। निरन्तर जो कुछ प्राप्त हो जावे, उसमें ही सन्तुष्ट रहा करे, एवं योगी अर्थात् चित्त को एकाग्र रखने का अभ्यास किया करे, अथवा कर्मयोग में सदा निरत रहे। अन्तःकरण अपने वश में रखे, आत्म ज्ञान से कल्याण होगा—ऐसी मन में दृढ़ भावना रक्खे और मन तथा बुद्धि को मुझे अर्पित कर दे, अर्थात्—मन, बुद्धि का विषय प्रधानरूप से मेरे को ही बनाये रक्खे, जो इस प्रकार की भावना रखता है, वह भक्त मेरा प्रिय है। (म० म० स्व० श्री गिरिधर शर्मा जी)

निष्कर्ष—शरीर की स्थिति के कारण की प्राप्ति और अप्राप्ति में जो सन्तुष्ट है, अर्थात् जिसको अलं प्रत्यय (बस, अब नहीं चाहिये) ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो गया है। इसी प्रकार गुण युक्त वस्तु के मिलने पर भी जिसकी ऐसी बुद्धि रहती है।

सदा सन्तुष्ट रहना चाहिये, जो मिले उसमें सन्तुष्ट रहना चाहिये, असन्तोष से द्वेष और झगड़े होते हैं, असन्तोष से ही अप्रसन्नता होती

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है और अन्त में द्वेष प्रारम्भ हो जाता है। सन्तोष से लालसा मर्यादित है 'मेरे भोग के लिये मुझे यह चाहिये' ऐसा आग्रह बढ़ने से असन्तोष बढ़ने लगता है। जो मिल जावे उसी में सन्तोष हो जावे तो सुख मिल सकता है। सन्तोष तभी होगा जब मन में किसी प्रकार की अपेक्षा-इच्छा और आशा न हो। (श्री सातवलेकर जी)

महोपनिषद् ४–३६–३७ में सन्तोष शब्द का इस तरह वर्णन हुआ है–

'यथा समय दैवयोग से आपत्ति या सम्पत्ति प्राप्त हो, इस प्रकार के ज्ञान द्वारा दैवेच्छावश अन्नवस्त्रादि पदार्थों की प्राप्ति तथा अप्राप्ति में सर्वदा' संतोष' रखे। जो सुख दुःख, मान—अपमान, लाभ–अलाभ में सर्वदा संतुष्ट रहता है, जो मिलने पर यथेष्ट शान्ति से भोगता है तथा आचरण सर्वदा सौम्य है।[1]

योगवाशिष्ठ मु० प्र० १५–१२ में जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा नहीं करता, प्राप्त वस्तु में उदासीनता रखता है तथा प्रारब्ध-वशात् प्राप्त होने पर सुख और दुख को भोग सकता है। उसको सन्तुष्ट कहते हैं।

महोपनिषद् ४-१–२ तथा योगवासिष्ठ मु० प्र० १६–१७–२२ में कहा है कि शम, विचार, सन्तोष तथा सत्संग ये चार संसार से तरने

---

१ सन्तुष्टः—आत्मन्येव च सन्तुष्टः, (३–१७) श्लोके, सन्तोषो हि बाह्यार्थ लाभे सर्वस्य भवति तम् अनपेक्ष आत्मनि एव च सन्तुष्टः सर्वतो वीततृष्ण इति एतत्। अथ च–नित्यं देहस्थितिकारणस्य लाभे अलाभे च उत्पन्नालं-प्रत्ययः तथा गुणवल्लाभे विपर्यये च सन्तुष्टः सततम्। (शंकराचार्यः) यत् तद् बहुलमिति बुद्धिः सन्तोषः, तदुपेतः तृप्तः, लब्धेष्वर्थेषु प्रसन्नान्तःकरणः इत्यर्थः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के लिये उपाय है, इन में से यत्नपूर्वक एक का भी आश्रय लेना आवश्यक है तथा एक की सिद्धि से और भी वश में आ जाया करते हैं।

सन्तोष—मोक्ष का द्वार है। (महोपनिषद् ४–१-२)

सन्तोष—धर्म का मूल तथा वैराग्य का प्राण है। (शां)

सन्तोष का विशेष वर्णन (यो० वा० नि० प्र० (उ०)४७-४३-४६, में हुआ है। सन्तोषादनुत्तमः सुखलाभः। (पा० यो० सू० २-४-२) अर्थात् सन्तोष से सर्वोत्तम सुख की प्राप्ति होती है।

प्रथम स्थितप्रज्ञ तथा ज्ञानी संतुष्ट रहते हैं। इसका वर्णन (गी० २-५५। ३--१७) में हुआ है।

इस तरह का सन्तोष कैसे प्राप्त हो, इसका उत्तर देते हैं—

योगी[1]—अर्थात् चित्त को एकाग्र रखने का अभ्यास करे, अथवा कर्मयोग में सदा निरत रहे।

योग—चित्त कीं वृत्तियों का रोकना ही योग है। इसी को समाधि कहते हैं। उस समय द्रष्टा आत्मा अपने स्वरूप में ही स्थित हो जाता

---

१. समाध्यर्थकाद् 'युज' धातोर्निष्पन्नोऽयं योगशब्दः—व्युत्पत्तिलभ्यं समाधिमेवाऽभिधत्ते। अतश्च चित्तवृत्तिनिरोध एव योगः, समाधिरित्यर्थः।
क्लेश कर्मविपाकाशयपरिपन्थिचित्तवृत्तिनिरोधे योगः (सर्व० सं.)
अत्रेदं बोध्यम्—विषयेष्वलंप्रत्ययवद् उदासीनस्य बहिरिन्द्रियेभ्यो व्यावृत्तं मनो यदा आत्ममात्रनिष्ठं भवति तदा तत्कर्मानुगुणप्रयत्नाभावात् कर्म मनसि नोत्पद्यते स्थिरतरं मनो भवति स एव योगः। (वै० उ० ५।२।१६)
यद्वा—इन्द्रियाणि विषयेभ्यः प्रत्यावृत्येन्द्रियेभ्यो मनः प्रत्यावृत्य साक्षात्कर्तव्ये वस्तुनि मनः प्रणिधानं योगः। (नील०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

है। अर्थात् वृत्तियों का निरोध होकर चित्त भी आत्माभिमुख ही हो जाता है। भगवान् पतञ्जलि ने 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्' इन सूत्रों से स्पष्ट किया है। वास्तव में बाह्यवस्तुओं से सम्बन्ध छोड़ने पर ही अन्तःकरण का आत्मा से योग होता है। अतः 'आत्मनियोगः। इस व्युत्पत्ति के अनुसार आत्मा से सम्बन्ध होना ही योग है। यहाँ योगी शब्द से प्राचीन टीकाकारों ने समाधिस्थित पुरुष लिया है।

भारत में योगक्रिया अत्यन्त प्राचीनकाल से है।[1] आर्येतर सिन्धुसभ्यता में योग प्रणाली प्रचलित थी, यह विभिन्न स्थानों में प्राप्त योगियों की मूर्तियों से स्पष्ट प्रतीत होती है। इन्द्रियों की स्थिर धारणा को ही योग कहते हैं। इन्द्रियों को वशीभूत करके योगीजन अप्रमत्त हो जाते हैं। यह कठोपनिषद् (६-११) में वर्णित हुआ है। चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ ही यह है कि—यावन्मात्र चित्त शुद्ध होकर सात्विकरूप एक परायण हो जाता है, तावन्मात्र ही उसकी उपयोगिता

---

१. योगः—भगवति मनसः प्रणिधानम्—प्र० १३-५१-५४।१५-४१-४२।१८-२५-२६ द्वि० १-६-२१।२-१५-१६।१६-२१ तृ० २५-१३-१६।२७-६।२८-१ ३६ च० ४-२४-२७।८-४३-४४।६-२।१२-१७-१-८२३-८-१४-१८।२८-३८-४२।३१-३ पं० ६-६ ष० २-४० ४२।स० १५-३०-३५ द० ८७-३३ ए० ६-११-१३।१४-३२-३७-४२-४४। यीग के लक्षण—तृ० २८। योग के तीन भेद—ए० २०-६-२८।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में विस्तृत वर्णन योग के लिये हुआ है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बढ़ जाती है। जब योग से अभीष्ट प्राप्ति हो जाती है तब चित्त की आवश्यकता भी नहीं होती है तथा चित्त निष्प्रयोजन भी हो जाता है।

योगपथिक में—सम्मान, स्त्री के प्रति आसक्ति, ये मुख्य शत्रु हैं। श्रीमद्भागवत में नारी विवेचन के अधिकार में ऐसे वर्णन हुआ है—

सङ्गं न कुर्यात् प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः।
मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति या निरयद्वारमस्य।
योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता।
तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम्। (३।३१।३९।४०)

यही नहीं इस प्रक्रिया से स्त्री—एवं शूद्र भी परम गति को प्राप्त कर सकता है। [म० भा० शान्तिपर्व २४०--३४]

'सततं योगी'—सदा भगवान् की भक्ति में ही लगा रहे। यह भक्ति का प्रसङ्ग होने से यहाँ भक्ति योगी[1] योगी शब्द का अर्थ लेना समुचित होगा ! किन्तु यह सरल कार्य नहीं है—इसका उत्तर देते हैं-

यतात्मा—इस शब्द से अपने संयम करने का उपदेश है। समय पर जो मिले उसी से सन्तोष हो जाना आत्मसंयम करने पर ही सम्भव हो सकता है। आत्मसंयम के अभाव में भोगेच्छा बढ़ेगी और

---

१. योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित्।
यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान्।
न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः।
(श्री० भा० ११ स्क०, २० अ० श्लो, ६–८)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वोक्त सबदोष उत्पन्नहोंगे, तथा समाज भी कभी सुखी नहीं हो सकता, इसलिये संयम का अवलम्बन करना अत्यन्त आवश्यक है।

इसका तात्पर्य यह है कि—इन्द्रियों का संयम अपने जीवन की स्वाधीनता तथा अपनी सब इन्द्रियों को अपने वश में करना चाहिए। जिसकी इन्द्रियां अपने वश में न होंगी, जिसकी आवश्यकताऐं बढ़ेंगी, आवश्यकताऐं बढ़ने पर व्यय अधिक करना पड़ेगा। व्यय बढ़ने पर उतनी आय न होने पर असन्तोष होगा और असन्तोष से चित्तवृत्ति अशान्त हो जायगी इसलिये आत्मसंयम आवश्यक है। अन्य संयमों की अपेक्षा स्वादजन्य अथवा रसनेन्द्रिय का संयम अत्यन्त आवश्यक है[१]। स्वादजय होने से अन्य संयम हो सकते हैं।

इन्द्रियाँ कैसे वश में हों—इसका उत्तर देते हैं—

दृढ निश्चयः[२]—दृढ़ निश्चय से ही समवृत्ति रखी जा सकती है। निश्चय की दृढ़ता न रहे तो मन विचलित हो जायगा और इधर-

---

१. विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते। (गी० २–५९)
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि। (भ० गी० २–६७)

२. निरन्तरसमाधिसञ्जातसम्यग्ज्ञानस्य विषयभूते परे ब्रह्मण्येवाऽऽत्मत्वानुभूत्या समुत्पन्नो ब्रह्मैवाऽहं न तु संसारीत्येवं लक्षणो दृढः। प्रमाणान्तरप्रत्ययान्तरैरच्छेद्यः स्वभावनिश्चयो यस्य दृढनिश्चयः। मूढो देहे यथा तथा ब्रह्मण्येवारूढाहंबुद्धिरित्यर्थः (शंकरानन्दी) दृढः कुतार्किकैरभिभवितुमशक्यतया स्थिरो निश्चयः 'अहं ब्रह्मास्मि' इत्यध्यवसायो यस्य सः। (ब्रह्मानन्दी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उधर गिर जायगा। अतः सब अवस्थिति रखने के लिये दृढ़ निश्चय अत्यन्त आवश्यक है। दृढ़ निश्चय जागतिक व्यवहार में भी उपयोगी है और हरएक स्थान में विजय प्राप्त करने के लिये दृढ़ निश्चय की अत्यन्त आवश्यकता है।

दृढ़ निश्चय के लिये गौतमबुद्ध का उदाहरण स्मरणीय है कि बोधि वृक्ष के नीचे आसन लगा कर उनका यह निश्चय था—इसी आसन पर बैठे हुए मेरा यह शरीर सूख जावे तथा अस्थि, मांस, त्वचा सब गल जावे एवं बहुत जन्मों में भी न मिलनेवाले बोध को प्राप्त किये विना यह शरीर इस आसन से हिलने वाला नहीं है—

इहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसानिलयं प्रयान्तु।
अप्राप्य बोधं बहुकल्पदुर्लभं नैवासनात् कायमिदं चलिष्यति।

मय्यर्पितमनोबुद्धिः—ईश्वर में मन और बुद्धि को समर्पण कर देना चाहिये। जिसने मन अर्पण कर दिया उसने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया। जो दुर्व्यसन में अपना मन अर्पण करता है, वह दुष्ट बनता है, इसी तरह जो मनुष्य अपना मन ईश्वरार्पण करता है। वह ईश्वर भाव से युक्त होता है।

परमेश्वर पर मन, बुद्धि और चित्त को लगाना, श्रद्धा रखना, मन में भक्ति भाव धारण करना, धर्म उपदेश का श्रवण करके तदनुसार आचरण करना इत्यादि सब ही बातें मानवीय मन को परम उच्च बनाने वाली है। यह उपदेश इतना स्पष्ट है, उस पर अधिक चर्चा करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस अध्याय के अष्टम श्लोक में भी—

मय्येव मन आधत्स्व मयिबुद्धिं निवेशय।
निवसिस्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

इसके द्वारा 'मय्यर्पितमनोबुद्धि' में मन को मेरे में ही रख दो। बुद्धि को मेरे में ही रख दो। शास्त्रों में मन को भगवान् में लगाने की अनेक युक्तियाँ वर्णित हुई हैं, यथा—श्रीमद्भागवत में भी—

(द्वि० १-१८-१९)।

अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगतिरेव च।
वासना सम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम्।
एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल॥

नियच्छेद् विषयेभ्योऽक्षान् मनसा बुद्धिसारथिः।
मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया।१।
तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा।
मनो निर्विषयं भुक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत्।
पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति।

बुद्धि की सहायता से मन के द्वारा इन्द्रियों को उनके विषयों से हटा लें और कर्म की वासनाओं से चंचल हुए मन को विचार के द्वारा रोककर भगवान् के मङ्गलमय रूप में लगायें। स्थिर चित्त से भगवान् के श्री विग्रह में से किसी एक अंग का ध्यान करें। इस प्रकार एक-एक अंग का ध्यान करते-करते विषय-वासना से रहित मन को पूर्ण रूप से भगवान् में ऐसा तल्लीन कर दे कि फिर और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किसी विषय का चिन्तन ही न हो। वही भगवान् विष्णु का परमपद है, जिसे प्राप्त करके मन भगवत्प्रेम रूप आनन्द से भर जाता है।

ज्ञान की निश्चयात्मक दशा को बुद्धि कहते हैं। इस बुद्धि के द्वारा सच्चा ज्ञान, सच्चा सुख और सच्चा कल्याण भगवान् की दया से ही प्राप्त होता है। अनेक योनियों में भटकने पर भी भगवान् की प्राप्ति बड़ी कठिन है। इसीलिये भगवान् में मन एवं बुद्धि को समर्पण कर दो—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

इस जीवन में भगवान् को जान लेने पर ही जन्म की सफलता मानी जाती है, यदि मनुष्य देह प्राप्त करके भगवत्प्राप्ति न कर सके तो महती हानि हुई।

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि। अ० २–६७ में—

अर्थात्– जैसे नदी के दूसरे किनारे पर जाने वाली नौका को प्रतिकूल वायु पकड़ कर उसको महा आवर्त में गिरा देती है, जल से भर कर डुबो देती है, महापाषाण से टकरा कर तोड़ देती है, उसी किनारे पर अथवा विषम स्थान में ले जाती है, सर्वथा अनर्थ ही करती है, वैसे ही विद्वान् की विवेक बुद्धि को भी अनादि अविद्या की ऊँची-नीची वासनाओं द्वारा आकृष्ट मन विषयों में, कर्म में, योग में, उपासना में, व्यवहार में अथवा अन्य किसी में गिराकर, जैसे वायु नाव को नष्ट कर देती है, वैसे ही नष्ट कर देती है। इसलिये मन बुद्धि को वश में करना आवश्यक है। यहाँ दृष्टान्त दिया है—जैसे वायु नौका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को जल में एक तरफ खींच लेती है। इसी तरह मन भी बुद्धि को अपनी तरफ खींच लेगा। इसीलिये कहा है 'मय्यर्पित मनोबुद्धिः।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः १५।

जिससे लोक उद्विग्न नहीं होता और जो लोक से उद्बिग्न नहीं होता तथा जो हर्ष, भय और उद्वेग से रहित है, वह मेरा प्रिय है।

वक्तव्य—मनुष्य का आचरण ऐसा होना चाहिये कि जिस से दूसरों को उद्वेग न हो और दूसरों के व्यवहार से उसको भी उद्बेग न न हो। यही आदर्श आचारव्यवस्था है। एसे उद्वेग रहित आचार व्यवहार करने वाले समाज को ही श्रेष्ठ समाज समझना चाहिए। हर एक मनुष्य को विचार करना चाहिए कि मैं जो आचरण कर रहा हूं वह दूसरों को दुःख देगा अथवा सुख, उन्नति करेगा अथवा अवनति इस तरह सोच विचार कर व्यवहार करने का प्रयत्न किया जायगा तो उद्वेग रहित आचरण हो सकता है। इससे जनता को उद्वेग नहीं होता और जो जनता के आचरण से उद्विग्न नहीं होता वही श्रेष्ठ और पूर्ण पुरुष है।

---

१. इसी को देवर्षि नारद ने 'नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति' अर्थात् भगवान् को अपने समस्त कर्म समर्पित कर देने पर तथा उनके विस्मरण में परम व्याकुल होने को दृढ़ निश्चय माना है।

२. उद्विजते—न संतप्यते न क्षुभ्यते। हर्षः—प्रियलाभे अन्तः करणस्य उत्कर्षो रोमाञ्चनाश्रुपातादिलिङ्गः, अमर्षः–असहिष्णुता, भयं त्रासः, उद्वेगः –उद्विग्नता (शंकराचार्यः)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जीवन्मुक्तिविवेक में श्रीविद्यारण्य स्वामी ने कहा है कि—भक्त को ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए, जिसकी सज्जन एवं साधु महात्मा निन्दा करते हैं, तथा जिससे लोग उसकी निन्दा करें उसके पास नहीं जाना चाहिये।

तथा तथा चरेद् योगी सतां वृत्तिमगर्हयन्।
जना यथावमन्येरन् गच्छेयुर्नैव संगतिम्।

इस श्लोक के उद्विग्न शब्द से यह अर्थ भी ध्वनित होता है कि—जिन बातों से संसारी पुरुष घबड़ाते हैं, उन बातों से ही भक्त जन प्रसन्न होते हैं—इसलिए जीवनमुक्त के वचनों में—संसारी पुरुष दूसरों को प्रसन्न करने के लिये उनको धन देते हैं, उनका सन्मान करते हैं तथा कोई हमारे दोष देखकर हमारी निन्दा करके ही सन्तुष्ट होते हैं, यह उसकी कृपा का फल ही है।

हर्षः—अभिप्रेतविषयकप्रार्थना प्राप्तौ सुखानुभवो हर्षः। (न्या० वा०)

अमर्षः—कृतापराधे असमर्थस्य द्वेषः (गी० वृ० ४।१।३)

भयः—अनिष्टहेतूपनिपाते तत्परित्यागानर्हताज्ञानम्। (गी० वृ० ४।१।३)

अनिष्टविषयसाधनोपनिपाते तज्जिहासोर्हानाशक्यता भयम् (न्या० वा०)

चित्तवैक्लव्यदं भयम् (सा० द० परि० ३ श्लो० १७८)

परमार्थप्रपायाम्—

नोन्मत्तात्पिशुनाज्जनाद्विरमते सर्वात्मभूतः पुमां
स्तस्मात्सर्वसुहृत्तमादपि जनो नाशङ्कते कश्चन।
अत्युग्रैर्जलजन्तुभिर्जलनिधिर्नैवाधिमेति क्षणं।
नो पादांसि भजन्ति भीतिमुदधेरत्यूर्जितात्सर्वतः। इति।

सर्वभूतेषु—ईश्वराधिष्ठानान् वीक्षणात्—यस्माल्लोको नोद्विजते इत्थम्भूतो मे प्रिय इत्यर्थः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति,
नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे ।
लोके जनाहि जनतापरितोषणाय,
दुःखार्जितान्मयि धनानि परित्यजन्ति ।

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः । १६ ।

जो किसी कार्य में किसी दूसरे की इच्छा न रखता हो, सदा पवित्र रहता हो, सम्पूर्ण कार्यों के करने के लिये चित्त में उत्साह रखता हो, किन्तु किसी कार्य में बद्ध नहीं हो, सदा तटस्थता की भावना रखता हो, चित्त में कभी भी दुःख नहीं मानता हो, और चित्त से सभी सुख दुःख देने वाले कार्यों के फल का त्याग रखता हो, ऐसा ही भक्त मुझे प्रिय होता है ।

अनपेक्षः—[1] सुखभोगकी इच्छा, अपेक्षा, आशा नहीं करनेवाला ।

---

१. अनपेक्षः—देहेन्द्रियविषयसम्बन्धादिषु अपेक्षाविषयेषु अनपेक्षो निःस्पृहः (शंकरा) दृष्टे श्रुतेऽपि च वस्तुनि सर्वत्र देहजीवनादावप्यसद्बुद्धया जीवत एव मुक्तत्वान्मोक्षेऽप्यपेक्षा न विद्यते यस्य ब्रह्मनिष्ठस्य यतेः सोऽनपेक्षः (शंकरानन्दी) अर्थात्–देखी और सुनी गई समस्त वस्तुओं में, और की तो बात ही क्या ? देहपोषण आदि में भी असत् बुद्धि के होने के कारण ब्रह्मनिष्ठ यति जीवित दशा में ही मुक्त है । अतः मोक्ष में भी जिस ब्रह्मनिष्ठ यति की अपेक्षा नहीं है, वह अनपेक्ष है, अर्थात् सब कामनाओं से निर्मुक्त है । सुखप्राप्तौ दुःखहाने वा तत्साधने वा लिप्साशून्योऽनपेक्षः । (नी० कं०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जितनी भोगेच्छा कम हो सके उतनी कम करने वाला, ऐसा करने पर ही सन्तोष होगा तथा समय पर जो मिलजावे उससे सन्तुष्ट होना।

यदि भोगलालसा बढ़ जावे तो चाहे जो मिल जावे उससे सन्तोष नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में सतत समाधान रहना ही असम्भव है। अतः भोगों की इच्छा को मर्यादित करके रहना आवश्यक है।

श्रीशङ्कराचार्य एवं श्रीशङ्करानन्द जी आदि की टीकाओं से स्पष्ट होता है कि निरपेक्ष होने पर ही भक्ति होती है, इसलिए निरपेक्षता ही उत्तम मुक्ति है, तथा निरपेक्ष होने पर ही भगवान् प्रिय हो सकता है। इस को श्रीमद्भागवत में—

नैरपेक्ष्यं परं प्राहुः निःश्रेयसमनल्पकम् ।
तस्मान्निराशिषो भक्तिर्निरपेक्षस्य मे भवेत् ।

(भागवत—११-२०-३५)

अर्थात् - निरपेक्षता ही परम उत्कृष्ट मुक्ति है। इसलिये सर्वात्मना निरपेक्ष होने पर ही मनुष्य सच्ची भक्ति कर सकता है।

श्रीशङ्कराचार्यजी ने कहा है कि—आत्मरूप से प्रत्येक प्राणी के हृदय में श्रीभगवान् विराजमान हैं, निरपेक्ष होकर उस परमात्मा में रत होना वास्तविक परमेश्वर की भक्ति है, ऐसे भक्तों के लिए मुक्ति प्राप्ति कोई कठिन नहीं है।

मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्याभिधीयते ।

इसीको देवर्षि नारद ने भक्तिसूत्र 'आत्मरत्यविरोधनेति शाण्डिल्यः' इस सूत्र से भी वर्णन किया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी निरपेक्ष का उदाहरण श्रीमद्भागवत (अ० ३।२५।३४) में—

नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति केचिन्मत्पादसेवाभिरता मदीहाः ।
येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ।

मेरी चरणसेवा में प्रीति रखनेवाले और मेरी ही प्रसन्नता के लिए समस्त कार्य करने वाले कितने ही बड़भागी भक्त, जो एक दूसरे से मिलकर प्रेम पूर्वक मेरे ही पराक्रमों की चर्चा किया करते हैं, मेरे साथ एकीभाव (सायुज्य मोक्ष) की इच्छा भी नहीं करते।

वस्तुतः निरपेक्षता बहुत ही उत्तम लक्षण है। निरपेक्ष भक्त की एकमात्र भगवान् ही प्राप्य वस्तु हो जाती है, ऐसे भक्त अपने सर्वाराध्य भगवान् के दर्शनों के लिए इस तरह विलाप करते है—

हे देव ! हे दयित ? हे भुवनैकबन्धो !
हे कृष्ण ! हे चपल ! हे करुणैकसिन्धो ?
हे नाथ ! हे रमण ! हे नयनाभिराम !
हा हा कदा नु भवितासि पदं दृशोर्मे । (श्रीकृष्णकर्णामृत)

शुचि :—शुद्ध, पवित्र, निर्मल रहना, निष्कलङ्क निर्दोष होना। व्यक्ति के आचरण में अन्नपान– खानापीना, कपड़े, घरबार, उद्यान नगर, देश आदि सभी स्थानों में शुचिता रहेगी तव आरोग्य रह सकता है। इसलिये शुचिता जिस प्रकार वैयक्तिक आचरण में उपयोगी है, उसी प्रकार सामाजिक आचरण में भी आवश्यक है। शुचिता जैसे आचार में वैसे ही विचार में भी होनी चाहिये। हर एक इन्द्रिय के विषय में शुचिता रखनी चाहिए।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी आदर्श को श्रीशङ्कराचार्यजी ने 'बाह्येन-आभ्यन्तरेण च शौचेन सम्पन्नःशुचिः, अर्थात् केवल बाहरी ही स्वच्छता नहीं अपितु अन्तः करण की पवित्रता भी होनी चाहिए। अर्थात् नित्यशुद्ध होना चाहिए।

दक्षः—कर्तव्य को दक्षता के साथ करना चाहिए। दक्षता न रहने से अशुद्धियाँ होती हैं, और यश नहीं मिलता। अतः दक्षता अत्यन्त आवश्यक है।

श्रीशङ्कराचार्यजीने 'प्रत्युत्पन्नेषु कार्येषु सद्यो यथावत् प्रतिपत्तुं समर्थः' अर्थात्—दक्ष कहते हैं, चतुर को। चतुर तभी होता है जब वह अनेक कर्त्तव्यों के प्राप्त होने पर उनमें शीघ्र ही यथार्थ कर्त्तव्य को करने में समर्थ हो।

उदासीन :—मध्यस्थ जैसा रहना। किसी पक्ष के साथ मित्रता नहीं चाहिए। दोनों विरुद्ध पक्षों के दोष मध्यस्थ उदासीन के पास नहीं आते हैं। इसलिए उदासीन जैसा रहने से सुखलाभ होता है।

गतव्यथः—श्रीशङ्करानन्दी के अनुसार 'यह करना था' यह मैंने नहीं किया। अथवा 'नहीं करना चाहिए था' यह मेरे द्वारा हो गया' ऐसी पश्चाज्जन्य व्यथाऐं नहीं होती हैं।

सर्वारम्भपरित्यागी—सम्पूर्ण सकाम कर्मों के आरम्भ का त्याग करने वाला, अर्थात् अपने भोग बढ़ाने के जो कर्म है, उनका आरम्भ तक न करने वाला, इतनी इच्छा रहित वृत्ति वाला जो भक्त होगा, वही श्रेष्ठ भक्त हो सकता है। इसमें अपने भोगों की लालसा बिल्कुल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कम हो जाती है और निष्काम कर्म योग अनासक्ति से करने की वृत्ति अधिक होती है। यही उसकी श्रेष्ठता का हेतु है।

वक्तव्य—यहां विभिन्न टीका कारों ने इस प्रकार अर्थ किये हैं।

सर्वारम्भपरित्यागी—जो आरम्भ किये जांय उनका नाम आरंभ है, इनके अनुसार इस लोक और परलोक के फलभोग के लिए किये जाने वाले समस्त कामनाहेतुक कर्मों का नाम सर्वारम्भ है, उनका त्याग करने का जिसका स्वभाव है[1] (शंकरा०) श्रीशंकरानन्दजी के मत में—सर्वारम्भ-लौकिक और वैदिक सब कर्म अविद्या, काम, सङ्कल्प अहंकार आदि दोषों के बढ़ाने वाले हैं। अतः ज्ञान और उसके फल के प्रतिबन्धक हैं, उसका त्याग करने का जिसमें स्वभाव है, अर्थात् सर्वकर्म सन्यासी।

श्रीगीताजी में त्याग और सन्यास शब्द का उल्लेख अनेक स्थलों में हुआ है।

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः। (४।२०)
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।

१—आरभ्यन्ते इति आरम्भाः—इहामुत्रफलभोगार्थानि कामहेतूनि कर्माणि सर्वारम्भाः तान् परित्यक्तुं शीलमस्य इति सर्वारम्भपरित्यागी। (शंकराचार्यः)

२—सर्वारम्भाः कर्माणि लौकिकानि वैदिकानि च सर्वाणि कर्माण्यविद्या कामसङ्कल्पाहङ्कारादिदोषप्रवर्धकत्वेन ज्ञानतत्फलप्रतिबन्धकत्वात् तानि परित्यक्तुं शीलमस्याऽस्तीति सर्वारम्भपरित्यागी। (शंकरानन्दी)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्दचस्व विगत ज्वरः। (३०।३०)
सर्वकर्माणि मनसा सन्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्। (५-१३)
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते। (१४-२५)
सन्यासस्य महाबाहो! तत्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश! पृथक् केशिनिषूदन। (१८-१)

इन श्लोकों की व्याख्याओं में विशेषतः श्री रामानुजाचार्य ने दोनों का समान अर्थ ही कहा है।

तथा उपनिषदों में इन दोनों शब्दों का इस तरह वर्णन है।

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।
तैत्तिरीय आ० १०-१० तथा मुण्डकोपनिषद्

अर्थात्—महापुरुषों ने अमृतत्व को कर्म, प्रजा या धन से नहीं अपितु केवल त्याग से प्राप्त किया। इसी तरह—

'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोके तु परान्तकाले परामृतात्परिमुच्यन्ति सर्वे।'
(श्वेताश्व तरोपनिषद्, रामानुजभाष्यम्)

अर्थात्—वे यतिगण जो वेदान्त के ज्ञान से अपने में सुनिश्चित अर्थों को धारण कर चुके हैं, जो संन्यास योग से युक्त हैं, शुद्ध सत्वगुण जिनका बढ़ा हुआ है, प्रलय या अन्तकाल में वे जन्म-मरण प्रवाह से विमुक्त होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त कर लेते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन वचनों में भी त्याग और सन्यास का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है।

श्री नीलकण्ठजी ने यहाँ पर कहा है—यद्यपि संन्यास और त्याग ये दोनों शब्द निवृत्ति के ही बोधक हैं। परन्तु वह निवृत्ति वैराग्य, शारीरिक कष्ट से भय, मूढ़ता आदि अनेक कारणों से होती है, इसलिये निवृत्ति के कारण सात्विक राजस आदि भेदों से भिन्न-भिन्न होते हैं। अतएव उन कारणों से होने वाली निवृत्ति भी सात्विक आदि भेदों से युक्त होती है। तथा संन्यासी हो जाने पर भी यदि वैराग्य भावना अन्तःकरण में प्रबल नहीं है तो रागद्वेषादि चलते रहेंगे। यहाँ वार्तिककार का एक वार्तिक भी उद्धृत किया है—

प्रमादिनो बहिश्चित्ताः पिशुनाः कलहोत्सुकाः।
सन्यासिनोऽपि दृश्यन्ते दैवसन्दूषिताशयाः।

अर्थात्—मुख्य सन्यास में वैराग्य भावना के प्रबलता की अनिवार्य आवश्यकता होती है। बिना वैराग्य भावना की प्रबलता के जो सन्यास ग्रहण कर लिया जाता है, उसकी अपेक्षा तो कर्मों को निष्काम भावना से करते रहना ही अधिक श्रेयस्कर है, इसी भाव से अष्टादश अध्याय के प्रारम्भ में श्री भगवान् ने काम्य कर्मों के त्याग को सन्यास तथा नित्य नैमित्तिक कार्यों को फल की अभिलाषा के बिना करते जाना त्याग शब्द का अर्थ किया है।

नानन्दयत्येव मनो मदीयम् ।५।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः। १७।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है और न किसी वस्तु की इच्छा करता है तथा जो शुभ और अशुभ दोनों का त्याग करने वाला और मेरे में भक्ति रखने वाला है वह मेरा प्रिय है।

वक्तव्य—हृष्यति–यह हृदय का एक विकार है। अतएव इसको 'चित्तोत्साह' भी कहते हैं। न्यायदर्शन के वात्स्यायन भाष्य में 'अभिप्रेतविषयकप्रार्थना प्राप्तौ सुखानुभवो हर्षः' कहा है। इसी को इष्टाधिगम्य आनन्द भी कहते हैं। इसीलिये लोक में किसी व्यक्ति को मान, धन आदि प्राप्त होने पर वह हर्षित होता है। किन्तु उसके साथ उसको दर्प भी होता है। मैं ऐसा वैभवशाली हूँ। इसी को आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा है—'हर्षः-चित्तोत्साहः। स च क्वचित् मिथ्याकारणं भवति। यथा हृष्टो दर्पति दृप्तो धर्ममतिक्रामति धर्मातिक्रमे खलु पुनर्नरकः।' इत्यादौ दृप् धात्वर्थः। दर्प आसुरी सम्पत्ति है। यह धन या स्वजनादि के कारण महापुरुषों के तिरस्कार का हेतुभूत—गर्व विशेष है। ऊपर श्रुतिनिर्दिष्टानुसार हर्ष होने पर दर्प होता है तथा उससे मनुष्य धर्म का अतिक्रमण करता है। "परावधीरणाहेतुश्चित्तवृत्तिविशेषो दर्पः।" ब्रह्मवैवर्तपुराण में इस प्रकार वर्णन हुआ है। यथा—

अहंकारश्च सर्वेषां पापबीजममंगलम्।
ब्रह्माण्डेषु च सर्वेषां गर्वपर्यन्तमुन्नतिः।
येषां येषां भवेद्दर्पो ब्रह्माण्डेषु परात्परे॥
विज्ञाय सर्वं सर्वात्मा तेषां शास्ताहमेव च।

पातञ्जलभाष्य में वाचस्पति लिखते हैं—

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुःखप्रतियोगिकः सुखित्वप्रयुक्तः श्चित्तवृत्तिविशेषः ।

साहित्यकारों ने दर्प का उत्साह अर्थ भी किया है, यथा—

तेजोविहीनं विजहाति दर्पः । (किरातार्जुनीयम्)

धर्मातिक्रमणे हेतुं तदुक्तं च स्मृतौ स्फुटम् ।
हृष्टो दृप्यति दृप्तः सन्नतिक्रामति धर्मतः । (स०टी०)

साहित्य शास्त्र में एक प्रहर्षण नामक अलंकार होता है। 'साक्षात्तदुद्देश्यकयत्नमन्तरेणाप्यभीष्टार्थलाभः प्रहर्षणम्" (रसगङ्गाधर) अर्थात् जहाँ किसी यत्न विशेष के बिना ही ईप्सित वस्तु की सिद्धि हो जावे, उसको प्रहर्षण कहते हैं। श्रीमदप्ययदीक्षित ने कुवलयानन्द में, इसके उदाहरण में दिया है।

'मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमै-
र्नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे ! गृहं प्रापय ।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ।

हे राधे ? आकाश घने बादलों से घिरा है, समस्त वनभूमि तमाल के निबिड वृक्षों से काली हो रही है रात्रि का समय है। तुम तो जानती हो, यह कृष्ण बड़ा भीरु है, इसको इस रात में जंगल में होकर घर जाते भय लगेगा। तुम ही इसको क्यों नहीं पहुँचा देती ? नन्द

दर्पः—दर्पो नाम-हर्षानन्तरभावी धर्मातिक्रम हेतुः । (शंकराचार्यः)
दर्पे—हर्षजन्यो मदो धर्मातिक्रमणहेतुः । (मधु० सू०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की इस आज्ञा को सुन कर घर की तरफ प्रस्थित राधा-माधव के द्वारा मार्ग में यमुना-तट के उपवन तथा लताकुञ्ज में की हुई एकान्त क्रीड़ायें सर्वोत्कृष्ट हैं। (गीतगोविन्द १-१) यहाँ 'न हृष्यति' का 'भगवद् दत्तं हर्षमनुभवति हर्षस्य कर्ता न भवति' अर्थात् भगवान् के दिये हुए हर्ष का अनुभव तो भक्त करता है, किन्तु हर्ष का कर्ता नहीं बनता।

न द्वेष्टि—जिस प्रकार के पदार्थ को दुःख का कारण समझ कर प्रथम अनुभव किया हो, फिर उसी जाति के पदार्थ के प्राप्त होने पर जो मनुष्य द्वेष करता है, उस भाव का नाम 'द्वेष'[1] है।

नीचे टिप्पणी में उद्धृत वाक्यों से स्पष्ट होता है कि जिन कारणों से द्वेष का उदय होना सामान्य व्यक्ति में स्वाभाविक है, उन समस्त

---

१. द्वेषो नाम—यज्जातीयमर्थं दुःखहेतुत्वेन अनुभूतवान् पुनः तज्जातीयं उपलभमानः तं द्वेष्टि सोऽयं द्वेषः (श्री शङ्कराचार्य १३-६) अमर्षलक्षणः दोषः (वात्स्यायन ४।१ ३)। इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गम् (गौ० १।१।१०) इत्यादौ द्वेषः। यज्जातीयस्यार्थस्य सन्निकर्षाद्दुःखमात्मोपलब्धवान् तज्जातीयमेवार्थं पश्यन् हातुमिच्छति। सेयं हातुमिच्छा द्वेषः। एकस्यानेकार्थदर्शिनो दर्शनप्रतिसंधानाद् दुःखहेतौ द्वेषः (इति भाष्यसम्मतोऽर्थः)। द्वेषश्च मनोग्राह्यः (कारिकावली श्लो० ५८ । अयञ्च प्रज्वलनात्मकः (प्रशस्त० पृ० ३३) यथा गीतायां—इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ (३।३४) इत्यादौ द्वेषः। यस्मिन् सति प्रज्वलितमिवात्मान मन्यते स द्वेषः। सचात्ममनसोः संयोगाद् दुःखापेक्षात् स्मृत्यपेक्षाद् वा उत्पद्यते। प्रयत्नस्मृतिधर्माधर्महेतुः। द्रोहः, क्रोधः, मन्युः, अक्षमा, अमर्षः, इति द्वेषभेदाः (प्रशस्त पृ० ३३) दुःखानुशय: क्लेशविशेषः द्वेषः-इति पातञ्जलाः। अयं द्वेषः बुद्धिधर्मं एव नात्मधर्म इति सांख्याः।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कारणों का भक्त के चित्त में उदय नहीं होना चाहिये। इसी तरह भक्त की शान्ति में बाधा डालने पर भी द्वेष नहीं करना चाहिये। अत्यधिक दुःख देने वाले के साथ भी द्वेष नहीं करना चाहिये।

ऐसे पुरुषों के लिये यमराज की आज्ञा है—

स्वपुरुषमभिसमीक्ष्य पाशहस्तं,
वदति यमः किल तस्य कर्णमूले।
परिहर भगवत्कथासु मत्तान्,
प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम्। विष्णुपुराण)

इस श्लोक में यमराज के दूत जब पाशको हाथ में लेकर पापियों को यमपुरी लाने के लिये जाते हैं, तब यमराज उनके कानों में यह आदेश देते हैं कि मेरे दूतो! सुनो, अन्य पुरुषों के बुलाने में समर्थ हूँ किन्तु भगवान् के भक्तों को मैं नहीं बुला सकता, इसलिये भगवान् की कथा, श्रवण कीर्तन आदि में लगे हुए वैष्णवों से तुम दूर ही रहना।

इसी तरह भगवान् ने दोषों को भी यह आज्ञा दी है कि मेरे भक्त के हृदय में नहीं जाना। इसके लिये श्रुति भी स्पष्ट कहती है—

एष ह्येवैनं साधुकर्म कारयतितं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत।
एव उ एवैनमसाधुकर्म कारयति तं यमधो निनीषते।

(कौ० ब्रा० ३।८)

इसलिये भक्त के हृदय में द्वेष आता ही नहीं, क्योंकि यद्यपि 'हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' इस भगवद् वचनानुसार भगवान् समस्त प्राणि-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मात्र के हृदय में विराजते हैं, भक्त के हृदय में तो विराजते हुए उसे सत्कर्मों के करने का आदेश भी देते हैं।

न शोचति—आत्मनिष्ठा से, धैर्य तथा शोक के अविषय आत्मज्ञान के बल से स्वयं अश्रुपात एवं विलाप नहीं करता। अर्थात् महान् अनिष्ट के प्राप्त होने पर भी शोक नहीं करता।[1] यह एक दोष है। यह शोक भूतवृत्ति है।

इसलिये शोक से गई हुई घटनाओं का स्मरण होता है। किन्तु अनन्य-मनस्क होकर भक्त भगवान् में मन लगाता है तब उसको शोक कहां से होगा, भक्त को शोक होता ही नहीं।

> यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे।
> भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा। (भाग०१।७।७)

---

१. महत्यनर्थे सम्प्राप्ते सति न शोचति। स्वनिष्ठया धैर्येण च तद् विषयात्मज्ञान-बलेनाऽपि च स्वयमश्रुमोक्षं विलापं च न करो तीत्यर्थः (शङ्करानन्दी)। इष्टवियोगे तल्लाभानहंताज्ञानम् (गी० वृ० ४।१।३) यथा अशोच्यानन्व-शोचस्त्वम् (गी० २) इत्यादौ। यथा वा—निवसति तरुणी ते कोकशोकं विमुञ्च्य (मुकु० माला) इत्यादि। इष्टविषयवियोगे सति तत्प्राप्त्यशक्यप्रार्थ-नाशोकः (न्या० वा०)।

१—न च अप्राप्तं कांक्षते (शंकराचार्यः)
प्राप्तस्य अनर्थस्य निवृत्तिं न कांक्षति, प्रारब्धभोगक्षयमन्तरा वाञ्छामात्रेण तन्निवृत्तेरसंभवात् तितिक्षया तत्प्रतीकाराय न किञ्चिद् यतते (शंकरानन्दी)

२—तथा प्राप्त हुए अनर्थ की निवृत्ति नहीं चाहता, क्यों कि प्रारब्ध भोग के क्षय के विना केवल इच्छामात्र से उसकी निवृत्ति असम्भव है। तितिक्षा से (सहनशीलता से) उसको हटाने के लिए कुछ यत्न नहीं करता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भगवान् में भक्ति हो जानेपर शोक-मोह तथा भय नष्ट हो जाते हैं।

न काँक्षति—जैसे शोक भूतवृत्ति है, वैसे आकांक्षा भविष्यवृत्ति है। इससे जो प्रिय पदार्थों के संयोग एवं अप्रिय पदार्थों के वियोग जन्म इच्छा नहीं करता। अर्थात् भगवान् की इच्छापर ही सब निर्भर हैं, वे अपनी इच्छा से ही करते हैं 'भगवानेव प्रभुः सर्वं विदधाति निजेच्छातः करिष्यति इति भावेन न प्रार्थयते, (वल्लभः)। इस भाव से प्रिय पदार्थ के वियोग के लिये प्रार्थना नहीं करनी। यह न्यायमत है। वस्तुतः भगवान् का यह मत है—

इच्छा आत्मधर्म है, यह नैयायिकों का सिद्धान्त है। 'आत्मजन्या भवेदिच्छा' इति। यह मनोग्राह्य एवं आत्मवृत्ति होती है 'साच मनोग्राह्य आत्मवृत्ति श्चेति विज्ञेयम्' (भा० प० श्लो० ५८) 'यथा इदं मे भूयात् इत्येवंरूपः कामोऽभिलाषो वा' (त० सं०) अतः इच्छा का यह नियम है कि वह निर्विषय नहीं होती है—

भगवान् की भक्ति की प्रबल इच्छा होजाने पर हर्ष, द्वेष, शोक एवं आकांक्षादि सांसारिक विषय भक्त के हृदय में उदय ही नहीं होते हैं। ये सब स्थितप्रज्ञ के लक्षण हैं इनका विशद वर्णन—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥(२।५५)

तथा गुणातीत भक्त के वर्णन में—

प्रकशं च प्रवृत्तिञ्च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति। (१४।२२)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन श्लोकों की व्याख्याओं में हुआ है तथा श्रीनीलकण्ठ ने योग-वासिष्ठ में प्रतिपादित सात योग की भूमिकाओं से इस तरह उद्धृत कर के स्पष्ट किया है—

ज्ञानभूमिः शुभेच्छाख्या प्रथमा समुदाहृता,
विचारणा द्वितीया तु तृतीया तनुमानसा ।
सत्वापत्तिश्चतुर्थी स्यात्ततोऽसंसक्तिनामिका,
पदार्थाभावनी षष्ठी सप्तमी तुर्यगा स्मृता ।

ऐसे गुणातीत पुरुष भक्ति में ही सदा निरत रहता है श्रीमद्भागवत (११।१३।३६) पद्य में आया है कि—

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थितं वा
सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत् स्वरूपम् ।

दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं
वासो यथा परिकृतं मदिरा मदान्धः ।

अर्थात्—सिद्ध पुरुष जो आत्मस्वरूप को प्राप्त कर चुका है वह नश्वर शरीर की निश्चेष्ट रूप से स्थित और उसकी चल अवस्था को उसी प्रकार नहीं देखता। जिस तरह मदिरा के मद से अन्ध व्यक्ति भाग्य से प्राप्त किये जानेवाले शुभाशुभों से। शुभाशुभपरित्यागी—

शुभ—यह 'शुभ दीप्तौ' धातु का रूप है, जो जीवन में दीप्ति उज्व-लता उत्पन्न करे उसको शुभ कहते हैं। शुभ शब्द मङ्गल, कल्याण का वाचक होता है। जो अमङ्गल तथा मलिन करे उसको अशुभ कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इन्हीं को हित-अहित, सुख-दुःख, इष्ट अनिष्ट प्रशस्त अप्रशस्त आदि नामों से व्याख्याकारों ने कहे हैं। इनमें शुभ साधना साध्यभाव है तथा अशुभ बाध्य बाधकभाव भाव है। यह शुभाशुभ फल कर्मबन्धन का हेतु है।[२] भगवान् के भक्त को तो – 'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेष विनाशौ। तद्व्ययदेशात्' (ब्र० सू० ४।१३) के अनुसार परमार्थतत्व के जानने पर प्रथम किए हुए शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा भविष्य में किये जाने वाले शुभाशुभों से संश्लिष्ट नहीं होते हैं।

निष्कर्ष-इस विषय पर माध्वभाष्यकार श्रीआनन्दतीर्थ ने इस तरह विचार व्यक्त किये हैं—कि सत्वादिगुण स्थूल और सूक्ष्म भेद से दो प्रकार के होते हैं। उनमें स्थूल सत्वादिगुणों से लौकिक प्रकाश-प्रवृत्ति और मोह उत्पन्न होते हैं तथा सूक्ष्म गुणों से परमेश्वर विषयक यह होते हैं। इनमें से गुणातीत पुरुष स्थूल गुणों से उत्पन्न प्रकाश-प्रवृत्ति-मोह की आकांक्षा और उनके प्रतिद्वेष से मुक्त रहता है। परन्तु सूक्ष्म भगवद् विषयक गुणों के कार्यों में तो उसकी आकांक्षा ही रहती है। इसलिये माध्वभाष्य में 'न द्वेष्टि, न कांक्षति श्लोक का अर्थ करते

शुभाशुभे–इष्टानिष्टफले (शंकरा० ९-२८)
शुभं सुखहेतुं सुमिष्टस्निग्ध पापसमोदकादिभोजनमिष्टरसादिपानं कोमलं सुरूपं वस्त्रं गृहपानादिकम्। अशुभं–दुःख हेतुतया मतमुक्ताद्विपरीतभोजन पानादिमृषासमाधिर्दाम्भिक इत्यादि वाक्यम्। (तत्वप्रकाशिका) शुभम्-अनुकूलम्, अशुभम् प्रतिकूलम् (शं० टी० श्रीध०) सुखहेतुं शुभं तत्तद्विषयं प्राप्य कर्मणा। न प्रशंसन्ति हर्षेण दुःख हेतुं तथाऽशुभम्। (स० टी०)

२—शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः (गी०)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

हुए 'प्राय.' और अधिक लगा दिया है, वह प्रायः इनकी आकांक्षा नहीं करता। अर्थात् स्थूल गुणों के कार्य लौकिक प्रकाश आदि के प्रति उसके आकांक्षादि नही होते। सूक्ष्मगुणों के प्रकाशादि कार्यों के प्रति तो उसकी आकांक्षा होती ही रही। इस कथन के समर्थन में ये प्रमाण हैं—

रजस्तमः सत्वगुणान् प्रवृत्तान् प्रायो,
न च द्वेष्टि न चापि काङ्क्षति।
तथापि सूक्ष्मं सत्वगुणं च काङ्क्षेत्,
यदि प्रविष्टं सुतमश्च जह्यात्।

(सामवेद की भाल्लवेय शाखा)

इस ऋचा में सूक्ष्म सत्वगुण की आकांक्षा का विधान है। महाभारत मोक्षधर्म प्रकरण का भी यह पद्य है—

न हि देवा ऋषयश्च सत्वस्था नृपसत्तम !
हीनाः सत्वेन सूक्ष्मेण ततो वैकारिका मताः।
कथं वैकारिको गच्छेत् पुरुषः पुरुषोत्तमम्।

इसका अर्थ यह हैकि—यदि देवता और ऋषि सूक्ष्म सत्वगुण से विहीन हो जावे, तब उनको सत्वस्थ नही कह सकते, अपितु उसको स्थूल गुणविकारों में स्थित रहने से तथा सूक्ष्म सत्व से विहीन होने के कारण वैकारिक ही कहना पड़ेगा, वैकारिक होने पर वे पुरुषोत्ताम भाव को कैसे प्राप्त कर सकेंगे, अर्थात्—उनका मोक्ष कैसे होगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नारदभक्तिदर्शन में—इस श्लोक को 'यत्प्राप्य न किञ्चिद् वाञ्छति न शोचति, न द्वेष्टि, न रमते। नोत्साही भवति, इसी सूत्र में भी कही है। अर्थात् भगवत्प्रेम या भक्ति प्राप्त हो जाने पर पुनः अन्य किसी की भी कामना नहीं होती। इसी को 'आलवन्दारस्तोत्र' में श्रीयामुनाचार्यजी महाराज भी कहते हैं—

तवामृतस्यन्दिनि पादपंकजे निवेशितात्मा कथमन्यदिच्छति।
स्थितेऽरविन्दे मकरन्दनिर्भरे मधुव्रतो नेक्षुरसं हि वीक्षते।

अर्थात्—हे प्रभो ? अमृत का क्षरण करने वाले आप के चरण कमलों में जिसकी आत्मा लग गयी है, वह किसी भी अन्य वस्तु की अभिलाषा कैसे कर सकता है ? मकरन्द से परिपूर्ण कमलस्थित भ्रमर इक्षु के रस की तरफ कभी देखता भी नहीं।

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः। १८।

शत्रु और मित्र में तथा किसी स्थान में मान अथवा अपमान भी हो जावे तो समान भाव रखना एवं शीत-उष्ण-सुख दुःख में समान ही रहे और किसी का चित्त से संग न किया करे तथा भक्तिमान् है, वह मनुष्य मुझे प्रिय है।

वक्तव्य—जीवन्मुक्तिविवेक में—जीवन्मुक्ति का वर्णन—

यश्च मे दक्षिणं बाहुं चन्दनेन समर्चयेत्।
वामं परशुना छिन्देत् उभौ तौ मे समौ मतौ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जो मेरी दक्षिणभुजा में चन्दन लगाता है तथा जो मेरी वाम भुजा को परशु से काटता है, मेरे लिये दोनों समान हैं। इसी तरह जो सर्वत्र समव्यवहार से समस्त को भगवत् स्वरूप देखता है, वह मेरा मित्र है, यह कैसे मान सकता है।

सर्वत्र पश्यति समं भगवत्स्वरूपम्,
योऽसौ कथं समवगच्छति शत्रुमित्रे।

शत्रु-मित्र का सुन्दर लक्षण महाकवि माघ ने इस तरह किया है—

उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा।
उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः। (शिशु० २-३७)

इस श्लोक में 'उपकर्तैव मित्रम्, अपकर्तैव शत्रु.' उपकार करने वाला मित्र तथा अपकार करने वाला शत्रु कहा है।

शत्रु—यह शब्द 'शातनात्-शत्रुः' 'शद्लृ शातने' धातु से निष्पन्न होता है, अर्थात् जो तकलीफ देवे उसको शत्रु कहते हैं। मित्र—यह शब्द 'मेद्यति स्निह्यति-इति मित्रम्' जो स्नेह उत्पन्न करे 'मिदि स्नेहने' धातु का यह रूप है। स्नेह का अर्थ है—आर्द्रीभाव।

चूर्णादिपिण्डी भावहेतुगुर्णः स्नेहः (त० सं०)
सांसिद्धिकद्रवत्वभिन्नत्वे सति,

चूर्णादिपिण्डीभावहेतुगु णः स्नेहः।
दर्शने स्पर्शने वापि श्रवणे भाषणेऽपि वा।
यत्र द्रवत्यन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अलङ्कारिक इसको प्रेम कहते हैं। प्रेम रूप स्नेह ही वत्सल रसका स्थायिभाव है। इसी को साहित्य दर्पण परि० ३ श्लोक २५१ में—

स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः।
स्थायी वत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम्।

निष्कर्ष—जो पदार्थ हमारे को हितकर प्रतीत होता है, उसके साथ हमारे अन्तःकरण का एक तरह का स्नेह हो जाता है। अतः मित्र में स्नेह होता है, इसलिये वह प्रिय होता है तथा शत्रु में स्नेह नहीं होने से वह अहितकर होता है।

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यञ्च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः। (भर्तृहरि)

वेद में मित्र का अर्थ सूर्य है—

दृते दृंहमामित्रस्य मा चक्षुषा
सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे।

अर्थात् मित्र की दृष्टि से सबको देखें। मैं मित्र की दृष्टि से सबको

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देखता हूँ। हम सब मित्र की दृष्टि से सबको देखें। इस मन्त्र में यह भाव व्यक्त किया है।

भगवान् का भक्त सूर्य के समान सबका मित्र है, जैसे सूर्य समस्त भूमण्डल को प्रकाश देता है, यह सूर्य अर्थ कहने का तात्पर्य है।

श्रीमद्भागवत में—मित्रता का इस तरह भी वर्णन किया है—

अथ सर्वेषु भूतेषु भूतात्मानं कृतालयम्
अर्हयेद् दानमानाभ्यां मैत्र्याभिन्नेन चक्षुषा। (३।२९।२७)

अतः सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर उनकी आत्मा के रूप में बैठे हुए मेरी (परमात्मा की) सेवा उनको इच्छित वस्तु देकर करनी चाहिये। दान देने का सामर्थ्य न हो तो उनका मान करो। उनका अपमान कभी मत करो। उनके प्रति मैत्री भाव रखो तथा उनको अभिन्न दृष्टि से देखो।

इसी तरह शत्रु के विषय में भी—भगवान् कपिलदेव कहते हैं—

---

१. दृते दृꣳहमा। दृते यजुः। 'दृ विदारणे' विदीर्णेऽपि रे जरया। दृꣳह दृढीकुरुमाम्। कथमिति चेत्। मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि सं ईक्षन्ताम् पश्यन्तु। अहमपि मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे पश्यामि। शान्तं हि मित्रस्य चक्षुः। न वै मित्रं कंचन हिनस्ति। न मित्रः कंचन हिनस्तीति। एवमहिंस्यमाना अहिंसन्तश्च परस्परमद्रोहेण सर्वथा मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे (उवटः)।

मित्रदृष्ट्या सर्वे मां पश्यन्तु नारिदृष्ट्या। सर्वेषां प्रियो भूयासमित्यर्थः। महीधरः शुक्लयजुर्वेद संहिता ३६-१८)।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्विषतः परकाये मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।
भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ।
अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयानघे ।
नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ।(३।२६।२३।२४)

जो भेददर्शी पुरुष दूसरों के शरीर में विद्यमान मुझ सर्वान्तरर्यामी परमेश्वर से द्वेष करता है उस अत्यन्त मानो और प्राणियों से वैर करने वाले पुरुष के चित्त को कभी शान्ति नहीं मिलती। हे अनघे ? ऐसा सर्वभूतों से द्वेष करने वाला पुरुष यदि बहुत सी श्रेष्ठ या साधारण वस्तुओं से मेरी प्रतिमा की नानाविध प्रक्रियाओं द्वारा पूजन करे तब भी मैं उससे सन्तुष्ट नहीं होता। इसलिये शत्रु और मित्र में समभाव रखना चाहिये।

तथा मानापमानयोः—पूजापरिभवयोः (शंकरा०) पूजापरिभवयोश्चित्तविक्षेपहेत्वोः (म० सू०) मानः—स्तुतिपूजोपचारादिः, अवमानस्तु-निन्दातिरस्कारादिः ।

संसारदुःखदृढकारणमाधिबीजं भ्रान्तेर्गृहं विविधकामभयादि मूलम् । चित्तं नियन्तुमचिरात्प्रभवन्ति धीराः यत्पादपद्मनिरतः स हरिर्ममेष्टः । (स० टी०) ।

संसारी पुरुषों से प्राप्त सत्कार और तिरस्कार द्वन्द्वों में जो सम हो।

वृन्दावन महिमामृतम्-मे श्री प्रबोधानन्द सरस्वती जी ने वृन्दावन के महत्व के वर्णन में मान-अपमान का सुन्दर वर्णन किया है, यथा—

भ्रातः-श्रीराधा-मुरलीधर का भजन करते हुए श्री वृन्दावन में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

निवास करो। वृन्दावन को त्याग कर अन्यत्र नहीं जावो। वृक्षों के नीचे रहो, व्रजवासियों के घरों में भिक्षा माँग कर भोजन करो, स्वच्छन्द श्री यमुना जल का पान करो, रास्ते में पड़े हुए चीरों की कन्था (गुदड़ी) बना लो। इसके लिये अधिक ध्यान रखो—सम्मान को अत्वन्त भयङ्कर विष मान कर उससे सावधान रहो तथा अपमान को अमृत के समान समझ कर रहो।

भ्रातस्तिष्ठ तले तले विटापिनां ग्रामेषु भिक्षामट
स्वचछन्दं पिब यामुनं जलमलं चीराणि कन्थां कुरु।
सम्मानं कलयाति घोरगरलं नीचापमानं सुधाम्,
श्रीराधामुरलीधरौ भज सखे ? वृन्दावनं मा त्यज।

इसी को अन्यत्र भी ऐसा कहा गया है कि—अपमान से तप की वृद्धि होती है तथा सम्मान से तप का ह्रास होता है, क्योंकि तपोवृद्धि से सहनशीलता एवं सात्विक गुणों की वृद्धि तथा तप के ह्रास से अहङ्करादि राजस गुणों की अभिवृद्धि होती है।

अपमानात्तपोवृद्धिः सम्मानात्तपसः क्षयः।

मनुस्मृति में कहा है कि—ब्राह्मण को सम्मान से उसी तरह भय करना चाहिये, जैसे मनुष्य विष से भय करता है तथा अमृत की तरह अपमान की आकांक्षा करनी चाहिये।

स्वमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव।
अमृतस्येव चाकांक्षेदवमानं द्विजोत्तमः।

विदग्धमाधव में भी—भक्तों के जीवन में प्रियता ही रहती है,

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वहाँ अप्रियता बिल्कुल नहीं रहती, इसका इन शब्दों में वर्णन किया है—सज्जन पुरुष दूसरों का भला करते ही हैं, वे यह नहीं देखते कि इसने भी कभी हमारा कार्य किया है या नहीं ? वे अपनी स्तुति को सुन कर लज्जित होते हैं तथा यह अनुभव करते हैं कि हमसे कोई पाप हो गया हो। विद्या, धन आदि की प्राप्ति से गर्वान्वित नहीं होते हैं। क्योंकि ये सद्‌गुण उनमें बनावटी नहीं होते हैं। ये तो उनमें नैसर्गिक ही होते हैं—

अप्रेक्ष्यफलममात्मनो विदधति प्रीत्या परेषां प्रियम्,
लज्जन्ते दुरितोद्यमादिव निजस्तोत्रानुबन्धादपि ।
विद्यावित्तकुलादिभिश्च यदमी यान्ति क्षमान्नम्रताम्,
रम्या कापि सतामियं विजयते नैसर्गिकी प्रक्रिया ।

भगवान् के भक्त एवं महापुरुष-मानापमान-प्रिया प्रिय में समवृत्ति वाले होते हैं—इसका चित्रण उत्तर रामचरित्र में भी देखिये—

प्रियप्रायावृत्तिर्विनयमधुरो वाचि नियमः ।
प्रकृत्या कल्याणी मतिरनवगीतः परिचयः ।
पुरो वा पश्चाद् वा तदिदमविपर्यासितरसं ।
रहस्यं साधूनां निरुपधि विशुद्धं विजयते ।

अर्थात्—सर्व साधारण के साथ प्रेमवृत्ति, विनय की मधुरता, वाक्संयम, स्वभाव से ही सर्व साधारण के लिये हितकारिणी बुद्धि, महापुरुषों के साथ परिचय, अगाड़ी तथा पीछे किसी के विपरीत रस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का उदय नहीं होना, यह साधुओं के निष्कपट, विशुद्ध जीवन का रहस्य है।

शीतोष्णयोः समः—

शीत और उष्ण ये प्रकृति के अनुसार हुआ करते हैं। इनके सहन करने का अभ्यास भी भक्त को होना चाहिये।

शीत—यह गुण हैं तथा स्पर्श विशेष है जैसे नैयायिकों ने जल के लक्षण में, 'शीतस्पर्शवल्य आपः'। (त० सं०) इसमें शीतत्व स्पर्शनिष्ठ जातिविशेष प्रत्यक्षसिद्ध है। अर्थात्-शीतस्पर्शयुक्त पदार्थ।

उष्ण—स्पर्शनिष्ठ जातिविशेष। यथा स्पर्श उष्णस्तु तेजसः (भा० प० श्लो० ४२) उष्णस्पर्शवत्तेजः (मु० १ पृ० ७७)

दुःख—'सर्वेषामनुकूलवेदनीयं सुखम्' अर्थात् समस्त प्राणियों की अनुकूलता रूप से इष्टरूप जानकर सम्पूर्ण प्राणी जिसकी प्राप्ति की इच्छा करते हैं, उसको 'सुख' कहते हैं।

'इष्टसाधनताज्ञानजन्येच्छाविषयगुणः सुखम्' अहं सुखीत्यनुभव विषयगुणः सुखम्, अन्येच्छाधीनेच्छाविषयत्वे सति भावत्वं सुख त्वम्' इत्यादि वर्णनों से अपनी इच्छा का विषय पराधीन नहीं हो, ऐसे भावों को सुख कहते हैं। इसलिए सुख सत्वगुण का परिणाम रूप चित्त की प्रीत्यात्मक एक वृत्ति विशेष है। 'सत्वपरिणामरूपप्रीत्यात्मकचित्तवृत्तिविशेषः' द्वारा स्पष्ट होता है।

दुःख—पीड़ा को दुःख कहते हैं। 'पीड़ा दुखं तच्च सर्वात्मनां प्रतिकूलवेदनीयम्' (तर्कभाषा) इसीको गौतम ने (१।१।२१) 'बाधनालक्षणं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दुखम्' बाधना पीड़ा। तदेवलक्षणं स्वरूपं यस्य तदित्यर्थः (गौ० वृ० १।१।२१)

यह दुःख मन से ग्रहण किया जाता है। न्याय के मत में यह जीव-मात्रवृत्ति होता है। सांख्यमत में तो दुःख चित्तादि धर्म है। बुद्धितत्व का परिणाम विशेष है तथा रजः कार्य है।

इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्बन्ध होने पर शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदिकों की उत्पत्ति होती है। ये संयोगज हैं। जो वस्तु दो के संयोग से उत्पन्न होती है। वह वास्तविक नहीं होने से नित्य नहीं हो सकती। जो वस्तु दो के सम्बन्ध से होती है, वहाँ उन दोनों के वियोग हो जाने पर नष्ट भी हो जाती है, इसलिए संयोजग वस्तु के नित्य होने में कोई दृष्टान्त नहीं मिलता है। भाव यह है कि—जब तक शरीर इन्द्रियादिकों का विषयों से सम्बन्ध होता रहेगा, तव तक उस सम्बन्ध की अनुकूलवा में शीत—सुख तथा प्रतिकूलता में उष्ण, दुःख होते ही रहेंगे। यह सुखदुःखादि की धारा शरीर एवं इन्द्रियों से दूर नहीं की जा सकती।

तात्विक दृष्टि से इन वस्तुओं की कोई सत्ता ही नहीं है तथा क्षणिक अनुभव मात्र के विचार से यदि इनकी सत्ता मान ली भी जावे तो भी उनका प्रतीकार नहीं है। इसलिये इनमें समत्व भावना ही रखनी चाहिये। यहां यह भी स्मरणीय है कि—शीत उष्ण आदि किसी वस्तु के धर्म नहीं है, अपितु संयोगज हैं। किसी वस्तु का त्वगिन्द्रिय के साथ संयोग होने पर त्वचा में बाह्य त्वगिन्द्रिय में यदि संकोच हो जावे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तब उसको शीत कहते हैं तथा किसी वस्तु के साथ सम्बन्ध होने पर त्वचा का विकार होने पर उसको उष्ण कहते हैं। इन संयोग पदार्थों की अनित्यता एवं अवास्तविकता का अनुभव सन्धान करते हुए ही पूर्व अ० २ –श्लो० १४·१५–मात्रास्पर्शास्तु का स्मरण हो जाता है।

तितिक्षा द्वारा व्यथा की निवृत्ति तथा व्यथा निवृत्ति के फल का वर्णन हुआ है– सहनं सर्वदुःखानामप्रतीकारपूर्वकम्। चिन्ताविलाप-रहितं सा तितिक्षा निगद्यते। (शंकर वि० चू० २४)

अर्थात्—समस्त प्रकार के दुःखों का प्रतीकार (उपाय) चिन्ता, विलाप रहित सहन करने को तितिक्षा कहते हूँ।

तितिक्षा—मोक्ष का द्वार है। श्रीमद्भागवत में––तितिक्षा का वर्णन (प्र० १६।२७।ए० १६।३६) में हुआ है। तितिक्षा का अभाव (क्रोध) नरक का द्वार है (गी० १६-२१) तितिक्षा ज्ञान का साधन है (गी० १३-६) तितिक्षा महान्‌गुण एवं ज्ञानी का लक्षण है। (गी० २-५६।१४-२४)

इस सहन शीलता के साथ अध्यात्मचिन्तन करते यह अवस्था भी हो जाती है कि फिर शीत उष्ण, सुख और दुःख उत्पन्न ही नहीं होते हैं। जिस तरह शीत उष्ण आदि की सहन शीलता का अभ्यास चाहिये, उसी तरह बन्धुवियोग आदि के कारण सुख दुख आदि का भी तितिक्षा

---

१. तितिक्षा क्षमा। 'शान्तिः क्षमा तितिक्षा च' इत्यमरः 'तिज निशाने इति धातोः गुप्तिज्किद्भ्यः सन्' इति क्षमार्थे सन् प्रत्ययः। (मल्लिनाथः)

सङ्गवर्जितः—आसक्ति वर्जित।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही उपाय है। क्योंकि सुख-दुःखादि का संयोग एवं वियोग अवश्यम्भावी है।

महाकवि श्रीभारवि ने तितिक्षा के महत्व को इन शब्दों में कहा है–

उपकारकमायतेर्भृशं प्रसवः कर्मफलस्य भूरिणः।
अनपायि निबर्हणं द्विषां न तितिक्षासममस्ति साधनम्॥
(किरा० २।४३)

अर्थात् भविष्य के लिए अत्यन्त उपकारिका और प्रचुर परिमाण में कर्म फल की जनयित्री शक्ति के सदृश स्वयं अविनाशी और शत्रुओं का विनाशकारी कोई अन्य साधन नहीं है।

श्री गीता जी में—

संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।
(२-६२-६३)

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥ १९॥

जो निन्दा स्तुति में समान है, मौनी है, तथा जो कुछ मिल जावे उसी में सन्तुष्ट है एवं अपना घर नहीं बनाता है, स्थिर बुद्धि है और भक्तिमान् है, वह मनुष्य मेरे प्रिय है।

तुल्यनिन्दास्तुतिः—निन्दा-दोषसङ्कीर्तनम्। स्तुतिः–गुणगणनम्। तुल्येनिन्दास्तुति र्यस्य स तुल्यनिन्दास्तुतिः। तथा च निन्दा दोष वत्तया

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ख्यापनम् । अरोप्यमाणदोषकथनमिति यावत् । यथा कूर्मपुराणे अ. १५) वेदनिन्दारतान् मर्त्यान् देवनिन्दार तांस्तथा । द्विजनिन्दा रतांश्चैव मनसापि न चिन्तयेत्' इति । निन्दा च निन्दकेन पूर्वकृतं पुण्यं हन्ति
(पुरु० चि० पृ० ३७)

निन्दा के लिये यह भी स्मरणीय है कि निन्दा के द्वारा मानव का अभिमान नष्ट होकर अपने दोषों के जानने का अवसर मिलता है, तथा उनको समझ कर दोष त्याग भी सकते हैं—

इसलिए निन्दा करने वाले से अप्रसन्न न होकर उसका उपकार मानना चाहिये।

मन्निन्दया यदि जनः परितोषमेति,
नन्वप्रयत्नसुलभोऽयमनुग्रहो मे । इति ।

इसी को 'जीवनन्मुक्तिविवेक' में श्रीविद्यारण्यजी महाराज ने अत्यधिक स्पष्ट किया है कि—यदि वे शरीर की निन्दा करते हैं, तो तुम्हारे सहायक ही है। यदि आत्मा की निन्दा करते हैं तो यह सम्भव नहीं है, क्योंकि आत्मा तो दो नहीं है। तुम्हारी एवं उनकी आत्मा तो एक ही है इसलिये अपनी निन्दा कौन करेगा—

शरीरं यदि निन्दन्ति सहायास्ते जना मम ।
आत्मानं पदि निन्दन्ति स्वात्मानं स्वयमेव हि ।

तुल्य निन्दा न होने से ही मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र जी इस निन्दा के कारण जगज्जननी श्री सीता जी का परित्याग कर दुःखी हुए—यथा—रघुवंश, सर्ग १४ ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कलत्रनिन्दागुरुणा किलैवमभ्याहतं कीर्तिविपर्ययेण ।
अयोधनेनाय इवाभितप्तं वैदेहि बन्धोर्हृदयं विदद्रे ।

अर्थात् इस प्रकार पत्नी की निन्दा से गम्भीर अपयश से ताड़ित राम का हृदय लोहे के घन से ताड़ित तप्त लोहे के समान विदीर्ण हो गया ।

तस्यापनोदाय फलप्रवृत्तानुपस्थितायामपि निर्व्यपेक्षः ।
त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव ।३९।

उस अपयश को दूर करने के लिये फल को मालूम करते हुए भी निःस्पृह होकर सीता को पिता की आज्ञा से सम्पूर्ण पृथ्वी के समान छोड़ूँगा ।

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ।

यह धर्मामृत उपदेश है, इसको जो मनुष्य श्रद्धा से मत्पर होकर सदाग्रहण करते हैं, वे मेरे भक्त हैं और मेरे को अत्यन्त प्रिय हैं ।

अध्यायेऽस्मिन्नेतदेव प्रोक्तं धर्म्यामृतं मया ।
इति वक्ति व्यक्तमत्र भक्त कल्पद्रुमो हरिः ।१।
तथाह्युपक्रमे प्रश्नः सगुणं निर्गुणं च ये ।
उपासते तेषु के वाऽधिका ? इति किरीटिनः ।२।
अव्यक्तोपासकेभ्योऽपि सगुणोपासका मम ।
सम्मताश्चाधिकाश्चेति तत्रोक्तमपि प्रभोः ।३।

मुद्रक— श्रीहरि प्रेस सी ६।७३ बागबरियार सिंह, वाराणसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanas